नये साहित्य-स्रष्टा
सम्पादक सच्चिदानन्द वात्स्यायन

काठ की घण्टियाँ

[कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना



भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला हिन्दी ग्रन्थाङ्क—८७
ग्रन्थमाला सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी

प्रथम संस्करण
१९५९
मूल्य सात रुपये

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी

भूमिका

अपनी पहली पुस्तकके प्रकाशनसे लेखकको जो आनन्द होता उसकी गुरुता अथवा गम्भीरताकी उपेक्षा किये बिना मैं यह कहना चाहता हूँ कि प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन मेरे लिए उससे कम आनन्ददायक नहीं है। बल्कि उसमें एक ऐसा सन्तोष भी है जो कि लेखकके सन्तोषसे बिल्कुल भिन्न कोटिका होता है। उसका आधार केवल अपने कृतित्वमें विश्वास नहीं बल्कि एक समूचे साहित्यमें आस्था होती है—जिसमें अपने अलावा दूसरोंका कृतित्व भी सम्मिलित है।

वास्तवमें 'नये साहित्य स्रष्टा" नामसे इस ग्रन्थमालाका आरम्भ ही इस व्यापक आस्थाका प्रतिबिम्ब है। हिन्दीके समवर्ती जिस युगमें बुजुर्गोंने नयी रचनाके प्रति क्षोभ प्रकट किया और मध्य-वयस्क लेखकोंने गति रोकनी चाही थी, पुराने आलोचकोंने शाश्वत भारतीय मूल्योंकी उपेक्षाका दुखड़ा रोया और नये आलोचकोंने अन्धाधुन्ध विदेशी परिभाषाओंमें देशी प्रतिभाको दबा देनेका उपक्रम किया, उसमें यह जन उन थोड़ेसे व्यक्तियोंमें से रहा जिन्होंने नयी साहित्य प्रतिभामें विश्वास नहीं खोया और जो उनका मार्ग प्रशस्त करनेके लिए भरसक उद्यम करते रहे—और शक्ति भरसे अधिक भर्त्सना सहते रहे। इस परिश्रमको उसने सही और कर्तव्य समझा तो केवल अहंकारवश नहीं, इसलिए कि उसने अनुभव किया कि समकालीन परिस्थितिमें केवल रचना कर देना पर्याप्त नहीं है, उसके अनुकूल परिस्थितियोंके लिए संघर्ष करना भी आवश्यक है।

'नये साहित्य स्रष्टा' ग्रन्थमालामें क्रमशः ऐसे साहित्यकारोंकी रचना पाठकके सम्मुख उपस्थित करना अभीष्ट है जिन्होंने न केवल नया या रोचक या अच्छा कुछ लिखा है, वरन् जिनका साहित्यिक कृतित्व उस स्वप्नका

भी प्रतिबिम्बित करता है जो इस कालके साहित्यकारको अपनी निष्ठाकी रक्षाके लिए और अपने कला मूल्योंकी प्रतिष्ठाके लिए करना पड़ता रहा। यह नहीं कि ऐसे सभी लेखक इस मालामें आ जायेंगे— जिनकी रचनाएँ स्वतन्त्र रूपसे प्रकाशित हो चुकी हैं या हो रही हैं वे इसमें नहीं भी लिये जा सकते हैं, क्योंकि एक ओर उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है और दूसरी ओर उससे न किसीकी क्षति होनेवाली है, न किसीके प्रति अन्याय।

यह इस संघर्षकी बहुमुखता और जटिलताका एक चिह्न है कि समस्त कृतिकार प्रायः एकसे अधिक माध्यमोंमें रचना करते हैं। ऐसे लेखक कम हैं जो केवल कहानीकार, या केवल कवि या उपन्यासकार या नाटककार या आलोचक हों। यह निरा 'हरफनमौला' होनेका शौक नहीं है, न अनुशासनहीनता अथवा अराजकताका चिह्न, न साधनाकी कमी अथवा गुरु शिष्य पद्धतिकी उपेक्षा। और यह भी एक अत्यन्त एकांगी सत्य होगा अगर कहा जाय कि आर्थिक कारणोंसे कृतिकारको सभी तरह की चीज़ें लिखनी पड़ती हैं। यदि कवि लोग कहानियाँ और रेडियो रूपक लिखने लगते और समीक्षक नाटककार (पाठ्यक्रमोपयोगी) हो जाते और बात वहीं तक रह जाती, तब तो आर्थिक प्रभावकी प्रधानता माननी पड़ती। पर ऐसे भी उदाहरण अनेक मिलेंगे जहाँ सफल कहानीकारोंने कविता लिखना आरम्भ किया है और आग्रहपूर्वक कविता लिखते हो चले गये हैं—यद्यपि कविता-से कुछ आय नहीं होती रही है जब कि कहानियोंकी माँग बराबर बनी रही है और उनके लिए पत्रोंका पारिश्रमिक पा सकना भी असम्भव नहीं रहा है।

यह बहुमुखता इस ग्रन्थमालामें प्रतिबिम्बित हो, यह उसके उद्देश्यका स्वाभाविक परिणाम है। बिना उसके वह कैसे समकालीन संघर्षों और प्रवृत्तियोंका प्रतिनिधित्व कर सकता ? पर वह इसलिए भी ग्राह्य और अभिनन्दनीय है कि इस प्रकार वह प्रत्यक्ष में घरेलू एक प्रातिकर विविधता दे देती है। एक पुस्तक एक साथ ही एक साहित्यकारका पूरा प्रतिनिधित्व

भी करे, और नाना रस-व्यंजनाओंसे पाठककी रसनाको लुभाये और तृप्त भी करे—यह सम्भावना इस ग्रन्थमालाको न केवल अपने ढंगका एक मात्र प्रयास बना देती है वरन् आजकी स्थितिमें एक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् प्रयोग भी। पाठक-वर्ग, आशा है, इसे इसी रूपमें ग्रहण करेगा।

'काठकी घण्टियाँ' के लेखक भी उन लोगोंमेंसे हैं जो पहले कहानीकारके रूपमें सामने आये। विश्वविद्यालय-जीवनमें ही कहानियोंपर प्रतियोगिताओंमें पुरस्कृत होनेवाले सर्वेश्वरजीके लिए ऐसी कोई लाचारी नहीं थी कि वह कहानियोंकी बजाय कविताएँ लिखने लगें। सन् १९४३ से १९५० तक वह कहानीकार ही लेखक थे। सन् १९५० में उन्होंने कविता लिखना आरम्भ किया तब ऐसा भी कोई कारण नहीं था कि वह कहानियाँ लिखना छोड़ दें—अर्थात् बाहरी कोई कारण नहीं था: आन्तरिक बाध्यताएँ तो कलाकारके जीवनका अंग है ही।

तीन-चार वर्षके समय अन्तरालके बाद उन्होंने फिर कुछ कहानियाँ लिखीं। 'सोया हुआ जल' नामका लघु उपन्यास या लम्बी रूप-कथा भी इसी समय लिखी गयी। इसके अनन्तर फिर चार-पाँच वर्षका कार्यान्तराल रहा, जिसके बाद फिर कुछ कहानियाँ और एक (अथवा डेढ़) नया उपन्यास लिखा गया।

ऐसा क्यों हुआ? इसकी पड़ताल निःसन्देह लेखकके कृतित्वके अध्ययन और मूल्यांकनके लिए उपयोगी होगी: अपने आपमें भी वह रोचक हो सकता है। किन्तु इस भूमिकामें उसमें जाना आवश्यक नहीं है। यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्रत्येक सोपानकी रचनाएँ पढ़नेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखकने न केवल माध्यम बदला है बल्कि उसकी संवेदनाका स्तर और उसकी दिशा बदल गयी है। इस प्रकार कहानी-लेखक कुछ वर्ष कविता लिखकर जब फिर कहानीकी ओर लौटता है तो फिर उसी छोरको नहीं उठाता जिसे वह छोड़ गया था, बल्कि एक नये

प्रदेशमें नयी राहपर चलता हुआ अपनेको पाता है। इसी प्रकार कवि जब गद्य लेखनके अन्तरालके बाद फिर काव्य क्षेत्रमें लौटता है, तो वह भी एक नये आयाममें।

इनमेंसे कुछ परिवर्तन तो साथ साथ वयस्कताके परिणाम हो ही सकते हैं। आरम्भकी कहानियोंमें हम अगर 'प्रसाद' की (यद्यपि अधिक सामाजिक प्रसाद' की ही) अनुगूँज पा सकते हैं और आरम्भिक कविताओंमें सीधी सहज भाषामें गीत लिखनेवाले 'बच्चन' की छाप, तो यह अस्वाभाविक नहीं है। किन्तु क्रमशः कृतिकारका अपना व्यक्तित्व विशद और पुष्टतर होकर सामने आता गया है और बादकी रचनाओंमें हम जो अन्तर देखते हैं—विभिन्न माध्यमोंकी अथवा एक ही माध्यमकी पूर्वापर रचनाओंमें वह 'क' और 'ख' के प्रभावका अन्तर नहीं है, वह असन्दिग्ध रूपसे सर्वेश्वर के ही सवेदनाके विभिन्न पहलू हैं अलग अलग परिस्थितियोंके साथ एक ही, किन्तु अनेकमुख, सवेदनाके घात प्रतिघात के नाना रूप परिणाम।

सर्वेश्वर इन परिवर्तनोंके प्रति कहाँ तक सजग थे यह नहीं कहा जा सकता। न उस सजगताका तत्काल होना या न होना ही पाठकके लिए कोई आत्यन्तिक महत्त्व रखता है। और न इस सम्बन्धमें प्रकट किये गये लेखकके अभिमतको ही ज़रूरतसे ज़्यादा महत्त्व देना चाहिए। कृतिकार अपनी कृतिके बारेमें जो कुछ कहता है उसको ठीक ठीक समझना या सही गौरव देना भी उतना ही दाक्षिण्य माँगता है, जितना कि नारीकी अपने विषयमें कही गयी बात। दोनों ही बातें अर्थहीन कभी नहीं होतीं, लेकिन दोनोंका ही अभिप्राय वह नहीं होता जो शब्दोंमें अभिहित हो। इसलिए सर्वेश्वर अगर कहते हैं कि 'जब वह गीतकी परिपाटी छोड़कर एक नये प्रकारकी कविता लिखने लगे तब उन्हें इसका भान नहीं था कि वह एक परती क्षेत्रमें प्रवेश कर रहे हैं या नयी भूमि तोड़ रहे हैं', तो आवश्यक नहीं है कि इसे सच मानकर भी तत्वत् ग्रहण किया जाय।

इसी प्रकार अपनी काव्यमय कहानियोंकी उनकी दी हुई यह सफाई कि 'हमने सोचा था कि कहानी नहीं लिखेंगे, इसलिए जो कहानी लिखी गयी वह कवितामय हो गयी' निराधार न होकर भी ज्यों-की-त्यों ग्राह्य नहीं है।

अगर मैं यह कहूँ कि मैं सर्वेश्वरको पहले कवि मानता हूँ, तो यह न समझा जाय कि मैं उनकी कहानियोंसे प्रभावित नहीं हूँ बल्कि उनकी इधरकी कहानियाँ और 'पागल कुत्तोंका मसीहा' नामका नया सांकेतिक लघु उपन्यास मेरी दृष्टिमें नये कहानी-साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्हें पहले कवि माननेमें मैं उनकी रचनाका मूल्यांकन नहीं बल्कि उनकी संवेदनाके प्रकारका निरूपण करना चाहता हूँ। *अनुभवका स्तर—भोक्ता संवेदना और भाव्य परिस्थितिके आपसी सम्बन्धका स्तर—कविताका* है क्योंकि जिस सत्यका प्रकाशन है, वह उसी क्षेत्रका है। मैं कहना चाहता हूँ कि अपनी सामाजिक दृष्टि, और अपनी रचनाओंमें स्पन्दनशील गहरी सामाजिक चेतनाके बावजूद सर्वेश्वरका सर्वप्रथम अनुभवका प्रकाशन है, सत्यसे केवल आनुषंगिक रूपसे।

छन्दोबद्ध व्यंग्य रचनाएँ, जिनका व्यास सामाजिक पाखण्डोंसे लेकर *राजनीतिक मतवादों तक फैला हुआ है, यहाँ अपवाद-रूप जान पड़ेंगी।* *किन्तु जब भी कविताके साथ कोई विशेषण लगता है—और उस विशेषण* का औचित्य मान लिया जाता है—तब वह विशेषण अनिवार्य भी हो जाता है, और उस प्रकारकी कविताको निर्विशेष्य रूपसे कविता नहीं कहा जाता। जिसे हम 'सैटिरिकल पोएट्री' कहते हैं, उसे केवल 'सेटायर' भी कह देते हैं किन्तु केवल 'पोएट्री' फिर नहीं कहते। इसलिए सर्वेश्वर जीके बारेमें मेरी अवधारणा ज्यों-की-त्यों रह जाती है। उनका सारा 'सैटायर' जो गद्य और पद्य दोनों रूपोंमें प्रकट हुआ है उनके कवि-रूप की प्राथमिकताका खण्डन नहीं करता।

कवि और कहानीकार दोनों ही देश-कालसे बँधे हैं। किन्तु निरपवाद होनेका आग्रह न किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि कहानीकारकी दृष्टि देशकी ओर अधिक रहती है और कविके कान कालकी झनकार की ओर अधिक लगे रहते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहानीकारका सन्दर्भ समाज और उसका विस्तार होता है, कविका सन्दर्भ जीवन और उसकी गहराई।

इस दृष्टिसे भी सर्वेश्वर पहले कवि हैं। उनकी कहानियों और उनके उपन्यासोंकी प्रवृत्ति भी गहराईकी पड़ताल की है। बाह्य वास्तविकताकी उपेक्षा या अवज्ञा कहीं नहीं है, किन्तु लेखककी दृष्टि उसीसे उलझकर रह जानेको तैयार नहीं। इसलिए उनकी गद्य रचनाओंमें भी एक प्रकारकी काव्यमयता है। गद्यमें भी यथार्थको मूर्त करनेके उनके साधन कविके साधन हैं। रूपाकारोंका वर्णन वहाँ प्रधान नहीं है और बिम्ब अथवा संकेत ही यथार्थको दर्शाते नहीं अवगत कराते हैं। निस्सन्देह इसका एक कारण यह भी है कि कहानियोंमें भी कविताकी भाँति सर्वेश्वर 'जो दीखता है' उसके पीछे 'जो है' उससे व्यस्त हैं और उस उभार अथवा उघाड़कर सामने लाना चाहते हैं। यह नहीं कि जो दीखता है जो सत्य ही है, उसे वह मिथ्या या अयथार्थ मानते हैं—बल्कि स्वयं मिथ्या भी अयथार्थ नहीं है। फिर भी आकारोंकी झिल्लीमें जो अभिप्राय रुँधा हुआ है और घुट रहा है वह मुक्त होकर हमारे सामने आवे, यही उनका आग्रह है और इसीमें सफलता उनके निकट साहित्यिक कृतिकी सफलता है। इसी लिए जहाँ उनकी रचनाओंमें परिस्थितियोंके प्रति विद्रोहका भाव और परिवर्तनकी आकांक्षा है, वहाँ यह स्पष्ट है कि वह बाहरका बदल देनेसे ही सन्तुष्ट नहीं है। उसको यथवा समझते हुए वह 'भीतरसे बदलने पर बल देते हैं। और इस 'भीतर' में अभिप्राय केवल अवचेतन यथार्थसे नहीं है जैसा कि साया हुआ जल के कुछ अंशोंसे (और शीर्षकसे भी) ध्वनित होता है भीतर' वह है जो बाहरके साथ रागात्मक सम्बन्ध

तोड़ता है और उन सम्बन्धोंसे मूल्योंका अस्वीकार करता है। क्योंकि बदलना मूल्योंका बदलना है, इसलिए नये रागात्मक सम्बन्धोंकी प्रतिष्ठा आवश्यक है और उसके लिए बाहर और भीतर दोनोंमें क्रान्ति वाञ्छित है।

क्या सर्वेश्वरकी रचनाएँ 'समकालीन' हैं? जिस लेखककी कृतियाँ स्पष्टतया समवर्ती परिदृश्यसे सम्बद्ध होती हैं—अपने समयका सामाजिक बहिरंग जिनमें स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है उन्हें समकालीन मान लेना आसान होता है। लेकिन जिनकी संवेदना समकालीन यथार्थताको कालके आयाममें सिरजना चाहती है उनके बारेमें इस प्रश्नका उत्तर देना उतना सरल नहीं होता। सर्वेश्वरकी अब तककी रचनाओंके आधारपर यह तो अभी नहीं कहा जा सकता कि आजका सामाजिक यथार्थ पूरी तरह उनकी पकड़में आ गया है, कि उसके विस्तारको उन्होंने नाप लिया है। लेकिन इतना बिना संकोच कहा जा सकता है कि उनकी संवेदनामें समकालीनताका स्पन्दन है। दूसरे शब्दोंमें समकालीन यथार्थ उनकी मुट्ठीकी पकड़में हो या न हो, उनकी चेतना द्वारा अवश्य नाप लिया गया है। और ऐसी रचनाएँ तात्कालिक प्रभावकी दृष्टिसे मर्यादित होनेपर भी स्थायित्वका गुण उनमें अधिक होता है।

मेरा विश्वास है कि "काठकी घण्टियाँ" एक नये साहित्य-जगतकी नयी सृष्टि होनेके नाते ही सम्मानित न होगी बल्कि लम्बे अरसे और उसकी रचनाओंके पुराने पड़ जानेपर भी अपनी ताज़गी और शक्तिसे पाठकोंको प्रभावित करती रहेगी। प्रस्तुत संकलन उनके प्राय: बारह वर्षके लेखन का व्यास नापता है। इसमें भी विकासके लक्षण स्पष्ट हैं, किन्तु और भी ताज़ा लेखनमें—मुझ भाग्यशालीको जिसे हस्तलिखित रूपमें पढ़नेका सुयोग मिला है, और जो मैं आशा करता हूँ अब शीघ्र प्रकाशमें आयेगा—सर्वेश्वर जिस साहस और सामर्थ्यके साथ आगे बढ़े हैं, वह उनकी भावी सुफलदायी प्रतिभाका तो है ही, हमारे साहित्यके लिए भी आशाप्रद संकेत है।

—सच्चिदानन्द वात्स्यायन

अनुक्रम

कविताएँ

उपन्यास

स्वर्गीया माँ को

बरसात अब भी आती है

[कहानियाँ]

डूबता हुआ चाँद

कोई विश्वास करे या न करे, लेकिन मैं सच कहता हूँ, कि उसका कुल इतना ही दोष था कि वह गोरी न थी। वह किसी अभिशापकी बदलीकी छाँहसे साँवली थी। यों उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। अपनी बन्द पलकोंको जब वह खोलती थी, तो लगता, जैसे सपनोंकी पखुरियों पर मासूमियत लहरा गयी हो, मुसकराती थी, तो जैसे बेरुखीकी जंजीरें टूट रही हों, और बोलती थी, तो उस स्पन्दनहीन, शान्त, मधुर, स्वरको सुनकर लगता, जैसे किसी खामोश गहरे-नीले समुद्रमें चाँद डूब रहा हो। वह बाहर-भीतर दूर और सुन्दर थी, रूपके साँचेमें ढली हुई, अमृतके सरोवरमें नहायी हुई। लेकिन वह गोरी न थी। उसका साँवलापन, उसका नस-नस, एक ज़हरीला दर्द बन कर उमड़ा करता था, पर उसने कभी उसे अधरों और आँखोंकी राहमें छलकने नहीं दिया। उसके पति एक धनी पण्डा थे। आँखोंकी कमजोरी आगे दूध मोटे चश्मे के शीशेसे दूर होती थी और दिमागकी चिड़चिड़ाहट पत्नी या घोड़ेकी पीठसे। उसके पास एक रईसी ठाटका एक्का था, जिसकी शान सिकोंगीके मेलेके समय निखरती थी। घोड़ेका नाम था नवाब। इलाहाबादमें वैसा घोड़ा कोई दूसरा नहीं था। शहरभरमें उसकी शोहरत थी। उसके दिलमें पत्नी और घोड़ेका वजन बराबर था। घोड़ेके लिए भी उसने सोने और चाँदीके ज़ेवर बनवा रखे थे और नौकर रख रक्खे थे। उसका घोड़ा भी ठण्डई और घी पीता

तुम्हें क्या मालूम कि तुम्हारे यहाँ न खानेसे वहाँ माँका कलेजा खुरचता होगा।"

और मैं इस वाक्यको सुननेमें अधिक उनके मुखकी ओर देख रहा था जिस पर स्नेह भरे उपालम्भकी गम्भीर दर्दीली छाया थी। उसे देख कर मैं पानी पानी हो गया। एक ओर मैं उनकी बाईस तेइस सालकी जवानी, भरे कच्चे शहतूत-सी उमर देखता और दूसरी ओर इन बुजुर्गियतकी बातोंका अर्थ सोचता। जो अभी तक माँ हुई भी न हो वह माँक कलेजेकी बात क्या समझे? मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि वह बोल उठी—

"अकेले पड़े रहते हो, इधर उधरकी सोचते होगे, तबीयत घबड़ाती होगी।" मैंने कुछ दबी जबानसे इस वाक्यमें निहित सचाईको टालनेकी गरज़से कहा—"नहीं तो।"

वे बोलीं—"मुझसे छिपाओ मत। घरकी चहारदीवारीमें बन्द रहने पर भी हम लोग आत्माका नस-नस समझती हैं।"

मैं चुप रह गया। वे फिर कुछ मुसकरा कर बोलीं—

"मैंने तुम्हारा खाना भी बना लिया है, बुरा तो नहीं है, खा तो लोगे ही मेरे हाथका!"

मैं शरममें गड़ गया।

वे बोलीं—"शरम किस बातकी। कभी-कभी मुन्नी आ ही जाती है। मैं ही दया जनमें ब गये हैं बस दिनमें एक ही बार खाना बनाती हूँ। अकेले लिए इतना झंझट कौन करे? फिर यहाँ तो दिन भर घरमें ही पड़ा रहना पड़ता है। तुम लोग पढ़ने लिखने वाले हलके ठाठसे खाओगे नहीं तो पढ़ोगे क्या? अपने

खाने-पीनेका ख्याल करो। खुद जी न किया करे तो मेरे पास चले आया करो, मैं बना दिया करूँगी।" उनकी बात सुनकर मेरे दिमागमें एक वाक्य घूम रहा था—"स्नेह और सहानुभूतिकी कीमत वही समझ सकते हैं, उनसे ही मिल सकती है, जो इससे जीवनमें वंचित हों।" मेरा हृदय कुछ भर-सा आया। मैं किसीकी उपेक्षा सह सकता हूँ, क्योंकि इसका आदी हो गया हूँ, लेकिन किसीका प्यार मेरे लिए असह्य हो जाता है। मैं कुछ भरी-सी आवाजमें बोला—"इतना ही बहुत है, इससे अधिक तकलीफ मैं आपको किस अधिकार पर दूँ, और अगर दूँ भी तो उस एहसान का बदला कैसे दे सकूँगा?"

वे कुछ गम्भीर हो गयीं। बोलीं—

"तुम लोग पढ़ लिख कर भी ऐसी बातें करते हो। कोई किसी पर एहसान नहीं करता। एहसानका बोझ वो मानते हैं जो स्वार्थी होते हैं, जिनका हृदय उदार नहीं होता। मेरे एहसानका बदला देनेको क्या इतनी बड़ी दुनिया कम है तुम्हारे लिए? और अगर मुझे ही बदला देना चाहते हो तो मरने पर मेरी लाश फूँक आना।"

उनके ये एक एक वाक्य तारसे मेरे कलेजेमें चुभ गये और आज तक चुभे हुए हैं। मैं कैसे बताऊँ कि उस दिन एक मामूली पढ़ी लिखी नारीके सामने मैंने अपनेको कितना छोटा महसूस किया था।

मन खाना खा लिया और फिर तो अक्सर जब वे अपने लिए खाना बनातीं, मेरे लिए भी बना लेतीं, और फिर मुझे बिना चूँ-

चपड किये हुए खा लेना पडता। अक्सर मेरा बना हुआ खाना नौकरको दे दिया जाता और मुझसे कह देतीं—"क्या बना पाते होगे तुम? रूखा-सूखा बिना नमक मिर्चका!" मैं इसका क्या जवाब देता। एक बार शायद कुछ कह भी तो बोल उठा—

"हम लोगोंकी जिन्दगी ही खाना बनाते बीतती है। पैदा होनेसे लेकर मरने तक चूल्हा हम लोगोंसे नहीं छूटता। जानते हो हम औरतोंका सबसे बडा साथी इस जीवनमें कौन होता है? चूल्हा!" और हँस पडी। मैं निरुत्तर हो गया।

उनका स्वास्थ्य अक्सर बिगडा रहता। एक दिन वे खाना बना रही थीं। उस दिन शायद तबीयत अधिक खराब थी। चौकेमें ही चक्कर आया, गिर पडीं। खबर पाने पर जब मैं पहुँचा तो वे चारपाई पर पडी थीं। नौकरानी बैठी पंखा झल रही था। मुझे देखते ही मुसकराने लगीं, वही बेबसीकी मुसकराहट। मुझे उन्हें देखकर कुछ तकलीफ हुई।

"तुम इतनी बीमार रहती हो, अपना दवा क्यों नहीं करतीं भाभी?" मैंने कहा।

वह एक फीकी हँसी हँसकर बोली—"क्या करना है?"

मैंने कहा—"क्या खूब रही, बीमार पडे रहना अच्छा लगता है। मुझे तो इतना समझाती हो, खुद नहीं समझतीं।" वे चुप रहीं।

मैंने इतने दिनोंमें प्राप्त स्नेहके अधिकारका प्रयोग करते हुए कहा— अगर तुम अपना दवा नहीं करोगी तो मैं तुम्हारी कोई बात नहीं मानूँगा और न तुम्हारे हाथका खाऊँगा ही। यह नहीं

हो सकता कि तुम मर-मर कर बनाया करो और मैं खाया करूँ।"

मेरी बातें सुनकर उनकी आँखें छलछला आया। क्यों, यह मैं कैसे बताऊँ? उन्होंने केवल इतना कहा—वह भी एक डूबी हुई आवाज़में—

"तुम क्या जानो? औरत अपनी दवा अपने-आप नहा कर सकता।'

मैं इस कथन पर सोचता रहा, मेरा दिल उमडता रहा। बार-बार मनमें आता, औरतको क्या इतना भी अधिकार नहा है? जब कि वह सैकडो रुपये महीने पानीकी तरह जुए और ऐशमें उडा देते हैं, क्या इनकी पाच पैसेकी दवा नहीं कर सकते? लेकिन उत्तर कौन देता?

मैंने पता नहीं क्या सोचते हुए कहा—"तुम महरानिन क्यों नहा रख लेती हो?"

उन्होंने एक रूखा जवाब दिया—"महरानिनके हाथका हम लोग नहीं खाते।" और मे इस कथनकी सत्यताके बारेम सोचता रहा। जब कि पण्डा महराज रेस्ट्राँ और अग्रेजी होटलोंमें छुप छिप कर चक्कर मार सकते ह और यह भी छुआछूतका इतना ढोंग नहीं रचतीं। फिर बात क्या है? बादम नौकरानीसे ज्ञात हुआ कि पडाजी महरानिनका खर्च एक बेकारका खर्च समझते है, जबकि घरमें एक पत्नी हे चाहे वह मर ही क्यो न रही हो? उनके इस रूखे उत्तरसे मुझे उस समय लगा जैसे मुझे यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए था। मैंने बात बदलते हुए कहा—

"तुम्हारी तबीयत कबसे खराब है—भाभी ?" उन्होंने मेरी तरफसे मुँह फेर लिया, जैसे उन्हें मेरा यह प्रश्न बिल्कुल अच्छा नहीं लगा और खामोश रहीं।

मेरे मुखसे निकल पड़ा—"नहीं बताओगी ?"

वे चुप रहीं। मैंने कहा—

"अच्छी बात है !" और उदास उठ कर जाने लगा। मेरे जानेकी आहट पाकर वो कुछ भारी आवाजमें बोलीं—

"खाना खा लो—मैंने तुम्हारे लिए ही बनाया है, नहीं तो सुबहका खाना मेरे लिए रक्खा था।"

मैं इससे तिलमिला उठा। इस बीमारीमें मेरे लिए खाना ! मेरे मुखसे निकल पड़ा—"मैं नहीं खाऊँगा !" और मैं तेज़ीसे ऊपर चला गया। जाकर मस्तिष्कमें एक दर्द भरा तूफान लिये हुए चारपाई पर गिर पड़ा।

थोड़ी देर बाद, नौकरानी थाली लिये हुए आयी और मेरे सामने रखती हुई बोली—"उन्होंने कहा है, उन्हें मेरा कसम है—खा लें।"

मैं चुपचाप खाने लगा और नौकरानी बताने लगी कि किस तरह जब इनके पेटमें दो महीनेका बच्चा था तभी बड़ा जाने इनको बहुत मारा था। इतना मारा था कि वे चारपाईसे एक महीने तक बिल्कुल उठ नहीं सकी थीं और तभीसे ये बीमार रहती हैं। नहीं तो इनकी तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी था। जितना काम ये करती थीं, उतना दूसरा कोई क्या करेगा ? और आज इस बीमारीकी हालतमें भी सारा काम खुद करती हैं, लेकिन उनके दिलमें ज़रा सा भी दया नहीं। मैंने पूछा—

"क्यों मारा था ?"

वह बोली—"बाहर किसीने मजाक उड़ा लिया था कि उनकी बीबी काली है और बस घरमें सारी गुस्सा उतार दी।" वह बैठी बताती रही कि कैसे घोड़ वाली चाबुक उन पर टूट गयी थी। किस तरह उनकी एक एक नस फोड़े-सी दर्द करती थी और वह महीने भर तक हल्दी तेल लगाती रही थी। "मारते सबके आदमी हैं लेकिन ऐसी मार नहीं मारते"—वह कहती रही। वहीं किसी प्रसंगमें उसने यह भी बताया कि यह सब राजपाट इन्हींकी बदौलत है। इनके बाप बहुत धनी पड़ा थे और यह अकेली लड़की थी। मरने पर सब कुछ इन्हींके नाम लिख गये। यह न होती तो यह रईसी न होती। और थाली उठाते उठाते भी कहती रही—"इतनी नेक और इतनी सीधी औरत आजकलकी दुनियामें मिलना मुश्किल है। अभी अलग हो जाय तो उनके सारे ठाठ हवा हो जाँय। एक वह हैं और एक ये हैं जिसने अपना सब कुछ इन्हींके नाम लिखवा लिया है। हम लोग तो इन्हींके भरोसे जी रहे हैं, बाबू। जिस दिनसे नहीं रहेंगी इस घरमें एक भी नौकर नहीं टिकेगा।"

उस दिनकी बात यहीं समाप्त हो जाती है यद्यपि उस रात मैं बड़े गहरे मानसिक उथल पुथलमें था और दूसरे दिन जब शामको बढ़ते अँधेरेमें पड़ा था तभी नौकरानीने आकर कहा था—"मलकिन ने कहा है अगर पढ़ न रहे हों तो चले आयें।" मैं उनके पास जाकर खड़ा हो गया, वे चारपाई पर पड़ी थीं। लगता था जैसे उनकी तबीयत बिल्कुल ठीक नहीं है। मुझे देखते ही बोलीं—"कल नाराज़ हो गये थे।"

"तुम्हारी तबीयत कबसे खराब है–भाभी ?" उन्होंने मेरी तरफसे मुँह फेर लिया, जैसे उन्हें मेरा यह प्रश्न बिलकुल अच्छा नहीं लगा और खामोश रहीं।

मेरे मुखसे निकल पडा—"नहीं बताओगी ?"

वे चुप रहीं। मैंने कहा—

"अच्छी बात है !" और उदास उठ कर जाने लगा। मेरे जानेकी आहट पाकर वो कुछ भारी आवाजमें बोलीं—

"खाना खा लो—मैंने तुम्हारे लिए ही बनाया है, नहीं तो सुबहका खाना मेरे लिए रक्खा था।"

मैं दर्दसे तिलमिला उठा। इस बीमारीमें मेरे लिए खाना ! मेरे मुखसे निकल पडा—"मैं नहीं खाऊँगा !" और मैं तेज़ीसे ऊपर चला गया। जाकर मस्तिष्कमें एक दर्द भरा तूफान लिये हुए चारपाई पर गिर पडा।

थोडा देर बाद, नौकरानी थाली लिये हुए आयी और मेरे सामने रखती हुई बोली–"उन्होंने कहा है,उन्हें मेरी कसम है—खा लें।"

मैं चुपचाप खाने लगा और नौकरानी बताने लगी कि किस तरह जब इनके पेटमें दो महीनेका बच्चा था तभी पति जीने इनको बहुत मारा था। इतना मारा था कि वे चारपाईसे एक महीने तक बिलकुल उठ नहीं सकी थीं और तमाम ये बीमार रहती हैं। नहीं तो इनका तनदुरुस्ती बहुत अच्छा था। जितना काम वो करती था, उतना कमरा कौन क्या करेगा ? और आज इस बीमारीकी हालतमें भी सारा काम खुद करती हैं, लेकिन उनके दिलमें ज़रा सा भी दया नहीं। मैंने पूछा—

"क्या मारा था ?"

वह बोली—"बाहर किसीने मजाक उड़ा दिया था कि उनकी बीबी काली है और बस घरमें सारा गुस्सा उतार दी।" वह बैठा बताती रही कि कैसे घोड़े वाला चाबुक उन पर टूट गयी था। किस तरह उनकी एक-एक नस फोड़-सी दर्द करती थी और वह महीने भर तक हल्दी तेल लगाती रही था। "मारते मरते आदमी हैं लेकिन ऐसी मार नहीं मारते"—यह कहती रही। वहीं किसी प्रसंगमें उसने यह भी बताया कि यह सब रायसाहब इन्हींकी बदौलत है। इनके बाप बहुत धना पैसा थे और यह अकेली लड़की थी। मरने पर सब कुछ इन्हींके नाम लिख गये। यह न होतीं तो यह बँगला न होता। और आगे उठाते-उठाते भी कहती गयी—"इतनी नेक और इतनी सादी औरत आजकलकी दुनियामें मिलना मुश्किल है। अभी अलग हो जाय तो उनके मारे आठ हवा हो जाँय। एक वह हैं और एक ये हैं जिसने अपना सब कुछ इन्हींके नाम लिख दिया है। हम लोग तो इन्हींके भरोसे जी रहे हैं, नहीं। किस दिनमें नहीं रहेगा इस घरमें एक भी तिनका [illegible]।"

उस दिनकी बात वहीं समाप्त हो जाती है [illegible] बड़े गहरे मानसिक उथल-पुथलमें था और [illegible] पढ़ते अँधेरेमें पड़ा था तभी नौकरानीने [illegible] ने कहा है अगर पढ़ न रहे हों तो [illegible] आकर खड़ा हो गया, न [illegible] उनकी तबीयत बिल्कुल ठीक नहीं है। [illegible]

"वे नाराज हो गये थे।

मैने रहा—"नहीं तो । और फिर तुमसे नाराज होना !"

वह बोली—"झूठ क्यों बोलते हो ?"

मैंने कहा—"तुम मुझसे छिपाती क्या हो भाभी । इतना दुराव क्या रखती हो ? क्या मैं इस लायक नहीं हूँ कि तुम अपने मनकी बात मुझसे कह सको ?" वह बोली—"तुम गलत समझते हो । इन आठ दस दिनोंमें ही तुम मेरे जितने अपने हो गये हो उतना शायद कोई नहीं हुआ । मैंने अपने जीवनकी एक-एक बात तुम्हें बता दी है । कुछ भी नहीं छिपाया । फिर हम औरतोंकी जिन्दगीमें ऐसा होता ही क्या है जो छिपाया जा सके ।"

मैंने कहा—"ओफ ! कितना सफेद झूठ बोल गयी तुम । अपना बीमारीकी बात कल तुमने मुझसे नहीं छिपाया था ? लेकिन क्या समझती हो मुझे पता नहीं लगा ? मुझे सब मालूम हो गया ।"

वह बोली—"तो क्या भला हुआ तुम्हारा ? तकलीफ ही बढ़ी होगी ।" मैंने कहा—"उससे अधिक तकलीफ मुझे तुम्हारे छुपानेसे हुई था ।" वह बोली—"कितने नादान हो तुम ! कोई औरत अपने पतिकी बुराई कर सकती है ।"

मैंने कहा—"अगर बुरा है तो उसे बुरा कहनेमें क्या हानि है ?" उसने कहा—"नहीं । पति देवता होता है । दुनियाकी निगाहमें बुरा होने पर भी औरतकी निगाहमें वह बुरा नहीं होगा । औरतको उसे बुरा कहने या समझनेका कोई हक नहीं है ।"

मैं बोला—"उनकी इतनी बेरुखी पर भी तुम ऐसा कह रही हो ।" उसने शान्त स्वरमें कहा—"तो क्या हुआ ? प्यार भी तो

करते ह।" मेने कहा—"व्यर्थ उनका पक्ष मत लो। तुम्हें जितना प्यार वे करते है म जानता हूँ—बकार मुझसे कुछ कहलाओ नहा।"

वह बोली—"तुम लोग नहीं समझ सकते। पति जो कुछ करता है, ठीक करता है। पतिके हाथसे कष्ट पाना भी औरतके लिए स्वर्ग है।"

मैं चुप हो गया। उसी समय जूतोंकी चरमर हुई। मैंने देखा पटा जी सामने खडे देख रहे थे। भाभी लेटी हुई थी, एक गुलाबी चादर ओढ़े हुए, और मै उनके पास ही उमी चारपाई पर बैठा था। मुझे इस तरह देखकर जैसे वे ठिठक गये और मेरे नमस्तेका बिना उत्तर दिये हुए ही सीधे अपने कमरेमें चले गये। वे गॉवसे अभी दस दिन बाद वापस आ रहे थे। मुझे इस प्रकार अपनी पत्नीकी चारपाई पर बैठे देखकर उन्होंने क्या सोचा होगा? सोचकर मैं किसी आशकासे कॉप सा उठा और हतप्रभ-सा भाभी के मुखकी ओर देखने लगा। वह मुझे परेशान देख कुछ मुसक राकर बोलीं—"तुमसे कुछ नहीं कहेंगे। अगर-कुछ कहना होगा तो मुझसे कहेंगे। इस समय बहुत गुस्सा हो गये है। तुम जाओ अपने कमरेमें। मैं समझा दूँगी तो शायद सब ठीक हो जायगा।"

और म अपने कमरेमें चला गया। मेरा दिल कॉप रहा था। सोचता था कहीं उनकी मुसीबत न करें। मुझे मालूम नहीं उस रात कैसे क्या हुआ? लेकिन दूसरे दिन सुबह जब मुझे बुलाया गया तब वे अपनी पत्नीके साथ उसी चारपाई पर चुपचाप बैठे थे। मेरे लिए पासमे कुर्सी पड़ी था, मैं उस पर बैठ गया। कुछ दो एक फुटकर बातोंके बाद बात ही बातमे मैंने कहा—

"मैं जबसे आया हूँ, तबसे मैं देख रहा हूँ कि इनकी तबीयत ठीक नहीं है, आप इनका इलाज कीजिए।"

वह हँससे बोला—"अरे! पहले पहल देखा है इसलिए ऐसा लग रहा है तुम्हें। यहाँ तो दो सालसे यही रफ्तार है। थोड़ी बहुत खराब होती है फिर ठीक हो जाती है।"

वह बोले—"कायदेसे खायें पियें तो तबीयत काहे खराब हो। कहना मानती नहीं है, अंट-संट खा लेती है तो भुगतें। मुझे क्या करना है?"

इतना कहकर वे उठकर बाहर चले गये। इधर इनकी तबियत बहुत खराब होती गयी और इधर घरमें तमाम आवारा औरतें चुपके चुपके बुलायी जाने लगीं। एक दिन मैंने बड़ी हिम्मत करके भाभीसे कहा—

"तुम्हें कुछ मालूम भी है?"

उन्होंने फीकी आवाजमें कहा—"हाँ, सब मालूम है। मैंने उन्हें इजाजत दे दी है।"

मैं आश्चर्यसे उनका मुँह देखने लगा। वे फिर बोलीं—"मेरे मना करनेसे वे मानते थोड़े ही ना, और फिर मैं तो बीमार ही रहती हूँ। क्या करें बेचारे? मैं किसी लायक ही नहीं हूँ।"

मैं सन्न रह गया। मैंने जोरसे कहा—"लेकिन यह बुरा है।"

वह हँससे बोलीं उसी बुझी आवाजमें—"पतिके लिए कुछ भी बुरा नहीं है। फिर आदमी तो ऐसा करते ही हैं। सबके आदमी करते हैं, उन्हें सब शोभा देता है।"

मैंने कुछ साफ कर कहा—"पर क्या यह ज्यादती नहीं है?"

वे बोलीं—"ज्यादती क्या है ? भगवानने उन्हें बड़ा बनाया है, मालिक बनाया है। वे सब करनेके लिए आज़ाद है। हम लोगों की तरह गुलाम थोड़े ही न हैं।"

मेरे जीमें एक ज़ोरका विद्रोह उठा। जीमें आया कि मैं चिल्ला कर कहूँ—"नारीकी यही अन्ध भक्ति उसे तबाह कर रही है। सब कुछ उसका होने पर भी उसे कुछ नहीं मिलता। सब कुछ दे देने पर भी वह कुछ नहीं पाती, एक हल्का-सा प्यार तक नहीं। आज पुरुष बिगड़ता जा रहा है, दिन पर दिन उसकी अन्ध-भक्तिके कारण उसीके लिए बुरा होता जा रहा है।" पर उनकी आँखोंके उस अडिग विश्वासके सामने कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ी। तभी उन्होंने मुझे पुचकार कर कहा—

"तुम उन्हें दोष मत दिया करो। उनकी भी मजबूरी समझा करो।" और मैं उस वाक्यके पीछे छिपी हुई पति-पूजाकी भावना पर तिलमिला गया।

उनकी तबीयत दिन पर दिन खराब होती गयी। वह चारपाई से लग गयीं। लेकिन उनकी कोई ठीकसे दवा नहीं हुई। जब पेट में ज्यादा दर्द होता था, ज्यादा दस्त आते थे, पासके वैद्यजीके यहा से चूरन आ जाता था। उनको कुछ भी हजम नहीं होता था। जितना थोड़ा-बहुत खाती थीं सब निकल जाता था। क्रम-रोग बढ़ती जाती थी, लेकिन किसीको कोई चिन्ता नहीं थी। बाहर बैठकमें वैसे ही दिन दिन भर 'फगुआ' जमता था, भंग छनती था, नाच-रंग होता था, दावतें उड़ती थीं, ठहाके लगते थे।

एक दिन मैं बिगड़ पड़ा गया और बिना किसीकी 'हाँ' 'न'

सुने हुए डाक्टर बुला लाया। डाक्टरने देखकर कहा—"आप लोग अब तक सोते रहे क्या? इन्हें आँतोंका टी० बी० हो गयी है। आतें सड़ गयी हैं। अब भी समय है किसी विशेषज्ञको फौरन दिखलाइये। आँतें काटकर रबड़की आँतें लगायी जायगी। जल्दी कीजिए, वरना हाथ धो बैठियेगा।"

डाक्टरके जाने पर वे बोले—"अरे! ये डाक्टर ऐसे ही डराया करते हैं। जिसको ईश्वर मारना चाहेगा कोई नहीं बचा सकता। बेकार है चार पाँच हजार रुपया फेंकना मेरी समझसे तो।" और फिर भाभीकी ओर मुँह कर बोले—"और फिर यदि तुम्हारी इच्छा हो ही तो कोशिश कर ली जाय।"

उन्होंने दृढ़ हो कर उत्तर दिया—"बिल्कुल बेकार है। जीना होगा तो जी ही जाऊँगी। तुम रुपया बरबाद मत करो। मुझे तो लगता है, कुछ भी नहीं है, सब ठीक हो जायगा, तुम घबड़ाओ मत।"

उसी दिन शामको वे (१४००) की मोटर-सायकिल खरीद लाये और उस पर घूमने निकल दिये। मैं उनके पास बैठा रहा। मेरा दिल बहुत घबरा रहा था। वे बोलीं—"सुस्त क्या हो?"

फिर अपने ही आप बोलीं—"मैं जानती हूँ तुम क्या सोच रहे हो। मैं अच्छी तरह हर बातमें उनकी इच्छा समझती हूँ, जानती हूँ वे क्या चाहते हैं, क्या नहीं। इसीलिए मैं खुद पहले से ही ऐसे काम कर जाती हूँ, जो उनकी इच्छाके प्रतिकूल होते हैं। औरत प्यार चाहती है।" पता नहीं कैसे मेरा मरा आत्माभि

इतनी बातें उनके मुखसे टूट टूट कर निकलीं और फिर ख़ामोश हो गयी ।

हम दोना बहुत देर तक गुमसुम रहे । साँझ हो चुकी थी । सूरजको डूबते देख घरके उस दालानमें अंधकार उमड आया था । वातावरण साँय-साँय कर रहा था । किसी मरे हुए हिरनकी पथरायी आँखोकी तरह यह ख़ामोशी भयानक थी । पर हम चुप थे । किसीके भी मुखसे जैसे आवाज़ निकलनेकी ताकत ही नहीं रह गयी । उस मैले बिस्तरेके, मटमैले तकियेके आकाशमें, मुझे लगता था, जैसे एक चाँद डूबता जा रहा है, उसकी रोशनी फीकी पडती जा रही है और अंधकार घना होता जा रहा है । मेरे दिल में दर्दकी काली लहरें उमडने लगीं । आखिरकार वही बोलीं—

"सुस्त क्यो हो ?"

मै कुछ उत्तर नहीं दे पाया । बढ़ता हुआ अंधकार सिवाय इसके कि अपनेमें ही घना हो-हो कर रह जाय, दूर डूबते हुए चाँदसे कभी कुछ कह पाया है ! फिर मै ही क्या कहता ?

वो बोलीं—"खाना आज नहीं खाया है, लगता है ।"

मैने कहा—"खा लूँगा ।"

उन्होंने कहा—"मुझमे तो हिलनेका भी सामरथ नहीं है। नहीं तो बना देता ।" और उनकी आँखोंसे आँसुओकी दो बडी बडी बूँदें बह गयीं । फिर बोलीं—उमडे हुए तूफानको शायद रोकती हुई

"तुम कहा करते थे कि तुम तरकारियाँ बहुत अच्छी बनाते

हो। आज पराठा तरकारी बनाओ, मैं खाऊँगी।" और एक फीकापन लिये हुए मुसकरा दीं।

मैंने कहा—"लेकिन तुम तो कहती थीं कि मैं दूसरेके हाथ का नहीं खाता।"

वह बोली—"लेकिन तुम अब दूसरे कहाँ हो।"

मैंने उनकी इच्छानुसार बड़े उत्साहसे खाना बनाया और उनके पास ले गया। थाली सामने रख कर बोला—"तुमने इतने मनमें कहा था, इसलिए टालनेकी हिम्मत तो नहीं पड़ी, लेकिन अगर तुम न खाओ तो बहुत अच्छा हो।"

वह बोलीं—"बेकारकी बात मत सोचो, खा पाकर मरने दो, आखिर मरना है ही।"

मैंने कहा—"तब मैं तुम्हें नहीं खाने दूँगा।"

वह बोलीं—"अच्छा, एक दो कौर खाऊँगी।"

मैंने कहा—"नहीं," और थाली उठा कर ऊपर रख आया।

उन्होंने कहा—"यह अच्छा नहीं किया तुमने, मरते हुए आदमीके सामनेसे थाली हटा ली।"

फिर बोलीं—"वो तो खाना खा चुके हैं न।"

मैंने कहा—"हाँ, अपने पड़ोसी दोस्तके यहाँ खा पीकर सिनेमा देखने गये हैं।"

तभी मेरे किसी दोस्तने बाहर आवाज़ दी, मैं चला गया और जब मैं लौट कर आया, तो मैंने देखा, उन्होंने नौकरानी द्वारा थाली मँगा ली है और तकियेके सहारे बैठी खा रही हैं। मुझे देख कर मुसकराया और बोलीं—

"अब तो मेरा कोई एहसान तुम्हारे ऊपर नहीं रहा न।" मेरे शरीर पर जैसे छुरियाँ चल गयीं। उन्होंने मुस्कराकर पानी पीते हुए, एक निश्चिन्त स्वरमें कहा—"अब चाहे भगवान् नरकमें ही डाल, तुमसे छुआछूत में नहीं निबाह पायी।"

उस समयसे उनकी तबीयत और खराब होने लगी। दूसरे दिन दोपहरीमें हम लोगोंके साथ ताश खेलनेकी इच्छा प्रकट की। यह कुछ विचित्र था, तब भी भाई साहब लक्षण अच्छे न देख कर और अन्तिम इच्छा समझ बैठ गये। हम तीनों मुश्किलसे एक बाजी खेल पाये जिसमें वह हार गयीं। फिर उन्होंने एक साथ खींच कर पत्ता फेंक दिया और मेरी ओर देख कर जोरसे परेशान सा चिल्लायी—"तुम कुछ भी कहो, मैं यह नहीं मानती।" पता नहीं इसके क्या अर्थ थे। उन्होंने इस हारसे क्या समझा? लेकिन मैंने इतना जरूर देखा जैसे उन्हें इस हारमें तकलीफ हुई है और उनकी सारी खुशी खत्म हो गयी।

यह सुबहका समय था। फिर दिन भर उनकी तबीयत तेजीसे बिगड़ती ही गयी। हम लोग सब पास बैठे रहे। चूरन वाले वैद्य दवाकी पुड़िया मुँहमें डालते रहे। लेकिन शाम तक वह चल बसीं। मरते समय उन्होंने दो इच्छाएँ प्रकट कीं। वह लगभग अन्त तक बोलती रहीं, देखती रहीं, समझती रहीं, लेकिन वह खुशी जो ताश खेलनेके पहले तक थी नहीं थी। पहली इच्छा उनकी अपने पतिसे थी। जिसके अनुसार उन्होंने उनका पैर अपने पास रखवा लिया और उन चरणोंकी धूलि अपने माथेमें लगा ली। और दूसरी इच्छानुसार उन्होंने मुझे बुलाया। मैं दूर जड़वत् बैठा था। पति

को पाससे हट जानेको कहा और उनके हट जाने पर मुझसे धीरे से बोलीं—

"मुझे तुम्हारे ऊपर बहुत यकीन है। मेरे मरनेके बाद एक काम कर देना।"

मैं चुपचाप खड़ा रहा। बोला नहीं। डर था कहीं भीतरका तूफान बाहर न फूट पड़े।

वह बोलीं—"इनकी जल्दी ही किसी सुन्दर गोरी लड़कीसे शादी करा देना।"

और फिर उन्होंने अपनी बड़ी बड़ी सुन्दर आँखें मेरी जल-भरी आँखोंमें डाल दीं और वे देखते देखते पथरा गयीं। लेकिन पथराते पथराते भी उन्होंने मुझसे बहुत कुछ कह दिया। काश कि वह 'कुछ' भी मेरा कलम लिख सकती, फिर मैं दुनियाको बताता कि वह हत्या था, एक निर्दोषकी हत्या थी, एक लेकिन नहीं कहूँगा, क्योंकि वह कह गई थी 'उन्हें' दोष मत देना। पतिका दोष नहीं होता। लेकिन क्या उस पतिका भी नहीं, जो उनकी लाश फूँक कर घर आते समय ही राहमें नाऊसे कह रहा था—

"ठीक कहते हो तुम। घर तो उजड़ गया। जल्दी ही बसाना भी पड़ेगा। उस लड़कीसे शादी तय करो जिसे मेलेमें देखा था। कोशिश करोगे तो उसकी माँ मान जायगी। वे लोग बहुत गरीब हैं।"

और नाऊ कह रहा था—"अच्छा सरकार, दसवाँ हो जाय जरा।"

"हाँ हाँ, सो तो हो ही जायगी, लेकिन तू बातचीत अभीसे शुरू कर दे।"

और मैं श्मशानसे लौटते समय उस निर्जन मार्गमें, इन लोगों की ये बातें सुन रहा था, और दूर प्रतिक्षण बढ़ते हुए आधी रातके अंधकारके बीच, आकाशके उस कोनेमें डूबता हुआ चाँद देख रहा था। एक चाँद तो डूब ही गया। लेकिन दूर उन टिमटिमाते हुए घरोंमें, ऐसे कितने ही चाँद डूब जाते होंगे—और उनकी चाँदनी किसी अँधेरे कोनेमें, अधर्मक्ति और अत्याचारकी परतोंमें घुट-घुट कर दफन हो जाती होगी।



सोनेके पूर्व

इस समय आधी रात बीत चुकी है। इस कमरेकी दीवारों पर खामोशी ऊँघ-सी रही है। मैं चाहती हूँ कि मुझे नींद आ जाय, लेकिन इतनी हलकी सी चाह भी आदमीका यहाँ पूरा नहीं होता। मुझे अपने ऊपर गुस्सा आता है, उन हवाके अलसाये हुए झोंकों पर गुस्सा आता है, जो रह रह कर बाहर बरसती हुई बरसातकी रंगीन नशीली फुहार चुराकर कभी कभी मेरे ऊपर डाल मुझे गुनगुना जाते हैं। कई बार मुझे ऐसा लगता है कि मुझे नींद लगभग आ गयी है और अब मैं कोई मधुर सपना देखने वाली हूँ। अपने थके हुए हाथ पैर, थकानके मीठे मीठे दर्दसे चूर शरीरका भान अब मैं खो चुकी हूँ। केवल मेरी आँखें इस कोमल शय्या पर छाये हुए अंधकारमें कुछ खोज रही हैं। बिल्कुल पास सिरहाने स्टूल पर एक जार रखा है, उसका पानी कभी लाल, कभी नीला, कभी पीला सा लगता है। बुलता हाथ, आमलेट, समोसा, चायके प्याले और इसी तरह चम्मच और कागजके गम्पर, इन सबकी हलकी आवाज़ भी बीच-बीचमें एक एक करके आ जाती है। और फिर वही जार कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी लाल, कभी नीला, कभी पीला, फिर लाल हो जाता है, और वह लाल पदार्थ ऊपर उठ रहा है। धीरे धीरे और नीचे-नीचे वह जार भी उठ रहा है, अंधेरेमें घिरा हुआ वह रोशनीमें नाच रहा है। उसका रंग बदला बदला लाल, हरा, नीला पीला बदलता जाता है, फिर अचा

नक गिर पड़ता है। फर्श पर गिर कर टूटनेकी ज़ोरकी झनझनाहट आती है और मेरे ऊपर ढेर सा पानी छलक कर गिर जाता है। चौंक कर मेरी आँख खुल जाती है, देखती हूँ भीगी हवाका एक झोंका खिड़की के दरवाज़ेको भड़भड़ा गया है और मेरे ऊपर एक फुहार डाल गया है। मैं चाहूँ तो खिड़की बन्द कर सकती हूँ, मेरा कपड़ा और बिस्तरा भीग चला है, पर यह फुहार अच्छी भी तो लगती है। फिर उठूँ कैसे? हाथ हिलाने तकको जी नहीं चाहता है। लगता है, जैसे जान नहीं है, शरीर शिथिल है, निर्जीव है। कई बार मैंने कोशिश की है खिड़कीके शीशे लगे दरवाज़ोंको बन्द करनेकी, जो हवाके इशारे पर खुलने और बन्द होने पर चौखट और दरवाज़ोंसे टकरा कर झनझना पड़ते हैं, पर बिल्कुल जो नहीं सकती हूँ। ऐसी हालतमें हवाके कारण अपने-आप दरवाज़ोंके बन्द हो जाने पर मुझे खुशी होती है और फिर यह सोचती हुई कि अब कोई झोंका नहीं आयेगा, मैं आँखें बन्द करने लगती हूँ। जिस रेस्तराँमें मैं आजकल काम करने लगी हूँ, उसके मालिकका चेहरा मेरी आँखोंके आगे बनने लगता है। मुझे यह बुरा लगता है क्योंकि मैं सोना चाहती हूँ, इसलिए कुछ खीझ कर मैं पलकें खूब ज़ोरसे दबाती जाती हूँ, उन्हें क्रमशः और ज़ोरसे दबाती जाती हूँ, यहाँ तक कि पुतलियाँ दर्द करने लगती हैं और फिर आँखें शिथिल हो जाती हैं, लेकिन उसकी शक्ल मिटती नहीं। गोरा-गोरा चेहरा, पिचके गाल, माथेके बायीं तरफ सूखे-सूखे गिरे हुए बाल, मत्थे पर तीन सलवटें जिनमें कभी गुस्सा और कभी परेशानी, मोटे-मोटे ओठ, जो मालूम पड़ते हैं उसके चेहरे पर

अलगसे जोड़े गये हैं। कभी कभी वे दाँतोंसे दबाये जाते हैं, लेकिन दाँतोंकी पंक्ति एक चौथाई ही आ पड़ती है। कभी कभी मुसकराते हैं। ऐसे अवसर पर वे और भी भद्दे लगते हैं। ओफ! ये भद्दे ओठ मेरे सामने क्या आ रहे हैं? हे भगवान्, इन्हें हटा लो मेरे सामनेसे। पर ये और और स्पष्ट होते जा रहे हैं। उनका आकार भी बड़ा होता जा रहा है। अब ये बहुत बड़े हो गये हैं। मेरी आँखें दर्द करने लगी हैं, लेकिन ऐसा लगता है जैसे ये पत्थर के होकर पलकों पर जम गये हैं। इतना बड़ा आकार देखकर मुझे हँसी आती है, नहीं, भय लगता है। ओफ! यह चायका सफेद प्याला उसके ओठोंके सामने कितना छोटा लगता है। जैसे दूध पीते समय एक हल्की-सी सफेदी उसके ओठोंके एक कोनेमें रह गयी हो। पत्थरके दो बड़े पाटसे उसके ओठ अब खुल रहे हैं। मैं नहीं चाहता ये खुलें, कोई इन्हें हटाओ, मुझे बचाओ! ये खुल गये, मुझे डर लग रहा है, आवाज़ भी निकल रही है—

'तुम्हारा नाम!' कैसी कर्कश, नीरस, अधिकारके गर्वसे भरी आवाज़! मैं इतनी भयानक आवाज़का उत्तर नहीं दूँगी, नहीं दूँगी। पर लगता है जैसे मैं काँप रही हूँ, उत्तर दे रही हूँ।

"मिस मोना फाक्स", मेरी आवाज़ बहुत काँपी है। 'मिस! ऐंग्लो इन्डियन। बहुत अच्छा! बहुत खूब।" ओफ! यह आवाज़! यह भद्दी मुसकान! मैं नहीं बरदाश्त कर सकती। उसके इन बड़े-बड़े ओठोंकी मुसकानमें उसकी छोटी-छोटी धूर्ततासे भरी आँखें भी अब फैल गयी हैं। वे आँखें कुछ और चमकी हैं, वे ओठ कुछ सिकुड़ कर और खुले हैं।

"नव्हेरपरे माहनार!" आवाज और दर्दभरा, नीरस, भयानक पर पता नहीं क्यों शब्द मीठे लग रहे हैं। जी में आता है एक बार वह यह वाक्य फिर दुहरा दे। पर—

"राम समझ लो!" और मैं यह सब नहीं समझना चाहती। राम, रेस्तराँमें, ईश्वर बचाये। किसी तरह यह सब मेरी आँखोंमें घूम जाता। लगता है मैं पूरी ताकतसे पलकें इन ओठोंको हटा रही हूँ, पर वे इतने भारी हैं कि हटते नहीं। नहीं—वे खिसक गये हैं, क्योंकि मेरे हाथ दर्द करने लगे हैं और आँखोंके सामने यह रेस्तराँकी नीली-नीली दीवार आ गयी है। मेरी आँखें देखती हैं और समझती हैं कि खुली हुई हैं। मैं बार बार जल्दी-जल्दी अपनी आँखें खोलती और बन्द करती हूँ, पर क्या करूँ मेरी पलकें बहुत भारी लगती हैं। नहीं! अब यह नीली दीवार खो गयी है और मेरी आँखोंके सामने हमेशाका अन्धकार भी खामोश है। घना अन्धेरा, आँखें खुली-की-खुली हैं। एक हल्की-सी कोशिश की मैंने पलकें बन्द करने की, पर लगता है जैसे वे हिलती ही नहीं, और मेरी आँखें खुली हैं और उनके सामने घूम रहा है घना अन्धेरा, जिसकी गति हर क्षण तेज होती जा रही है।

कानोंके पास एक सूँ-सूँकी आवाज आ रही है। मैंने समझने-की कोशिश की। यह बाहरकी तेज हवा है जो सुनाई दे रही है। पर यह आवाज और तेज होती जा रही है। जी में आता है कि कान बन्द कर लूँ, पर हाथ हिलानेकी तबीयत नहीं करती। वे हिलते ही नहीं। अँधेरेका नृत्य आँखोंके सामने अब धीमा होता जा रहा है। लेकिन आवाज तेज होती जा रही है और हवाका

एक जोरका झोंका आया। खिड़कीके दरवाजे धड़से खुल गये। पानीकी बहुत बड़ी बड़ी बूँदें बिस्तर पर आ गिरीं और गिरती रहीं। हवा तेज़ीसे आ रही है, अपने असंख्य पंखों पर पानीकी कभी कभी छोटी छोटी और कभी कभी बड़ी बूँदें लादे हुए। पानीकी बौछार ज़ोरसे आ रही है और लगातार मेरे ऊपर पड़ रही है। मैं भीग रही हूँ, बिस्तर भीग रहा है, पर यह विचार बननेसे भी नहीं पाता कि एक अनायास घने कुहासेमें छिप जाता है और मैं भूल सी जाती हूँ। इस समय केवल मुझे बड़ा तेज आवाज़ सुनाई पड़ रही है। शायद आँधी भी आ गयी है। इस तेज़ आवाज़में एक मोटी आवाज़ भी सुनाई देने लगा।

"तुम्हारा काम है मुसकराना, उन लोगोंके पास जाना और पूछना, आप क्या चाहते हैं?" यह वही आवाज़ है जिसके सुननेसे मैं मरना बेहतर समझता हूँ, पर लगता है जैसे मैं कह रहा हूँ 'अच्छा'।

आवाज तेज़ होती जा रही है और बार बार मुझे सुनाई देता है, "तुम्हारा काम है मुसकराना, तुम्हारा काम है मुसकराना मुसकराना-मुसकराना।" यह आवाज़ तेज़ और तेज़ तथा पतली होता जा रहा है, इस आँधीके शोरमें जो मैं सुन रही हूँ। मेरे हाथ पैर पर अब लगता है जैसे कोई हथौड़ा मार रहा है। एक एक मेरा सारा पत्ते काँपने लगता है। कानोंमें गूँजता हुई आँधीकी आवाज अब धीरे धीरे कम होने लगा है। पर वह पतली आवाज तेज होने लगा है, फिर वही नारा भी बाजार। तेज प्रकाश, रंग बिरंगे कपड़े वाले आदमी कहकहे, अट्टहास बातचीत, गाना, गुनगुनाना, विचित्र विचित्र स्वर, चम्मच-कॉटोंकी खनखन,

चाय, काफी, टोस्ट, आमलेट, घूमती हुई तश्तरियाँ, बार-बार मैनेजरकी घंटी, यह लाओ, वह लाओ, वहाँ जाओ, उनसे पूछो, पैसोंकी खनखन, मैनेजरका मेज पर सिगरेटका धुआँ, लोगोंकी मेरी ओर घूरती हुई आँखें। सब तेजीसे मेरे दिमागके अन्दर घूम-सी रही हैं। पूरा रेस्तराँ घूम रहा है, कमरा घूम रहा है, मैं खुद घूम रही हूँ, चारपाई घूम रही है। ओफ! यह सब क्या हो रहा है? जीमें आता है मैं चिल्लाऊँ, जोरसे चिल्लाऊँ, पर मेरी आवाज नहीं निकलती। मुझे चक्कर आ रहा है। लगता है मैं आसमान से जमीन पर गिर रही हूँ। सन-सन् सूँ-सूँकी आवाज़। बीच-बीच में दो मोटे ओठ और फिर भारी स्वर—"तुम मुसकराना नहीं जानती, कल सीख कर आना, अगर काम करना हो।" मैं तिल-मिला उठी हूँ। नीच, कुत्ता! मुसकराना सीखकर आओ! मैं नहीं आऊँगी। नहीं काम करूँगी। पर यह आवाज़ गूँज रही है आँधी की तरह, तूफानकी तरह मेरे कानोंमें—

ओफ! मैं सोना चाहती हूँ। किसी तरह नींद आ जाती। पर नहीं आयेगी शायद! नहीं, आयेगी, जरूर आयेगी। ओफ!

इस समय लगने लगा है जैसे सारा तूफान खामोश हो गया है। धुँएके गहरे काले बादल, मस्तिष्कमें घुसे रहे हैं। अब भी सब चीज़ घूम सी रही है लेकिन उनका आकार धुँधला और गति शिथिल-सी होता जा रहा है। मैं तो चाहती हूँ कि उनका आकार बिल्कुल मिट जाय—और सब शान्त हो जाय। तन्द्राकी लहर पर उनींदे स्वरमें छोटे स्वप्नोंका गीत एक हल्की कम्पन-सी लहरा कर रजनीकी कालिमाकी तरह मुझपर फैला दे और मैं मुक्ति पा

निकलती और ये मुखाकृतियाँ छोटी-बड़ी अनेक आकारकी होकर मेरी आँखोंके समक्ष छाये हुए अंधकारमें मँडराती हुई मुझे डरा रही हैं। इनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। प्रत्येक आकार जल्दी जल्दी परिवर्तित होकर और भयानक होता जा रहा है। उस अंधकारकी पृष्ठ भूमिपर जिनमें ये चेहरे नाच रहे हैं, केवल तमाम वासनासे भरी हुई अनेकानेक आकारकी आँखें स्पष्टतया चमकती हुई मेरी ओर घूर रही हैं। लगता है उनकी वासनात्मक चमक मेरे अङ्ग-अङ्गपर छुरियाँ चला रही है। मैं तिलमिला उठता हूँ, मानो ये खा जायगी मुझे। मैं काँप रहा हूँ और ये चमक रही हैं और भयानक होकर। कानोंमें एक आवाज़ घूम रही है, तड़प रही है गरज रही है, 'तुम्हारा काम है मुसकराना' 'मुसकराना'। भयसे मैं सूख रहा हूँ। मैं चाहता हूँ किसी तरहसे ये हट जायँ या मेरे प्राण निकल जायँ। ये घूरती हुई भयानक आँखें इस अंधकारमें अङ्गारा-सी जल रही हैं। मुझपर बरस रही हैं। मैं जल रहा हूँ, तड़प रहा हूँ, लेकिन यह आवाज़ आती ही जा रही है 'तुम्हारा काम है मुसकराना मुसकराना।'

शायद आजकी रात मैं सो नहीं सकूँगा, मर सकूँगा या नहीं यह भी नहीं कह सकता। इतना तो लगता है जैसे मैं अधमरी हो गया हूँ। ये आँखें इस अंधकारमें नाचती ही जा रही हैं। इनकी भयानकता बढ़ती ही जा रही है। संख्या बिन्दुओंके टक बन बन कर ये मुझे मार रही है। मैं जा रहा हूँ, देख रहा हूँ जबरदस्ती, परवश, अकेले असहाय, और यह आवाज प्रतिक्षण गूँजती जा रही है—"तुम्हारा काम है मुसकराना मुसकराना।"

कमला मर गयी

"सुना है कमला मर गयी।" माँने अपने उस लम्बे चौड़े खतमें जिसमें उसने तमाम इधर-उधरकी बात लिखा है, एक कोनेमें यह भी लिख लिया है। जैसे इसके लिखने की उसने कोई जरूरत न समझी हो और पता नहीं कैसे यह लाइन उसकी कलम से निकल पड़ी हो। आकाशमें अनन्त तारोंके बीच जैसे किसी तारेके टूटने पर कोई कह पड़े "देखा नहीं तुमने, अभी एक तारा टूटा था" और फिर अपने काममें लग जाय। एक बात थी जो सूचनाके रूपमें निकल पड़ा। उसके पीछे कोई विचार, कोई गहरा अनुभूति, कोई सहानुभूति नहीं, केवल एक सूचना—सूचनामात्र!

मैंने यह पंक्ति पढ़ा। कई बार पढ़ी। कई ढंगसे पढ़ा, विभिन्न स्वराघात दे देकर पढ़ी। सम्भव है कोई दर्द, कोई हल्की सहानुभूति इसके पीछे मिल ही जाय पर लगता है सब निरर्थक है। इस पंक्तिके पढ़े रहनेमें या निकाल देनेमें खतका कहीं कुछ बनना-बिगड़ना नहीं, वह अपनेमें पूर्ण है और मेरी जिन्दगी भी है, ठीक इस पत्रकी तरह। कमलाका नाम कभी किस कोनेमें था बहुत आँखें गड़ाकर देखने पर, मस्तिष्क पर जोर डालने पर ही पता लगता है, उसके 'रहने' ने इस लम्बे चौड़े जीवन पर कहीं कोई प्रभाव नहीं डाला और आज उसके 'न रहने' ने कभी कुछ ऐसा नहीं किया कि उसकी कुछ कमी खटके। लेकिन कमला 'मर गया'। यद्यपि यह 'मर जाना' शब्द मैं दिन भरमें सैकड़ों बार सुनता हूँ

पर—बेकार प्रभावहीन पर—कमलाके साथ इस 'मर जाने'का सम्बन्ध कुछ अजीब लगता है। लगता है मर गयी तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर न मरती तो अच्छा था। यही आराम और कमलामें मेरे लिए भेद है। जब जिन्दा थी, इस दुनियामें रहकर भी वह मेरे लिए नहीं था, लेकिन आज मर जाने पर जैसे वह मेरे लिए कुछ हो गयी हो। जब तक वह ज़िन्दा था मैंने कभी उसके लिए कुछ नहीं सोचा लेकिन आज जब वह मर गयी है, मैं उसके लिए कुछ सोच रहा हूँ। उसकी ज़िन्दगीने तो नहीं, लगता है उसकी मौतने कहा थोड़ा बहुत उसको मुझसे बाँध दिया है।

एक घना कोहरा है मेरी आँखोंके आगे, जिसमें से उसमें सम्बन्धित स्मृतियाँ टटोल रहा हूँ। एक घटना पकड़में आ रही है। मुझे आश्चर्य है कि यह घटना आज तक मुझे याद क्यों है? आजसे लगभग बारह वर्ष पूर्वकी बात है, जब मैं नौ या दस वर्षका रहा हूँगा, कमलाका परिवार मेरा पड़ोसी था। मेरे घरसे लगभग दो फर्लांगपर उसका घर था। उसकी माँ और मेरी माँ में बहुत दोस्ती था और अक्सर वे लोग एक-दूसरेके यहाँ आया जाया करती थीं। यही कारण हमारे उसके सम्पर्कमें आनेका था। यों बच्चोंका सम्पर्क परिवारकी अपेक्षा अधिक शीघ्र और गहरा हो जाता है फिर वह तो मेरी समवयस्का भी थी। खेल-कूदमें हम लोगोंको बहुधा एक दूसरेकी ज़रूरत पड़ती थी। मैं स्वभावसे ही गम्भीर था और जितना ही मैं गम्भीर था उतनी ही वह चञ्चल थी। शामका समय था। मेरा मकान बहुत छोटा खपरैलका था और वह भी एक गलीमें। इसीलिए प्रकाश जल्दी विदा ले लेता था। मैं बैठा

पढ़ रहा था। मगर गिरजे सायंकाल भी अधिक काला था अब अँधेरा होते ही मैं लालटेनका प्रकाश करने लगता था क्योंकि मुझे उसे देखकर डर लगने लगता था। उस अँधेरेमें उनके काले-काले चेहरेमें उनके सफेद दाँत रह-रहकर चमक उठते थे, जब वह मुझे हिसाब लगाते समय कहीं गुणाभागमें गलती करनेपर टोकता था उस समय मुझमें ज़रूर गुस्सा होता था और साधारण गलतियों पर जब वह मेरे कान पकड़कर चिल्लाता था तब मैं आँख बन्दकर चीख उठता था, दर्दसे कम लेकिन माँ द्वारा सुनाया हुई [illegible] कहानी याद करके अधिक। ऐसे अवसरपर मैं हिसाब भूलकर भगवानकी याद करने लगता था। उस दिन ऐसा ही अवसर था जब मैं भगवानकी याद कर रहा था। वह मेरे कान पकड़ रहा था और कमरेमें अँधेरा छा गया था। तभी कमलाके पिता आये थे। उन्होंने कहा—'मास्टर साहब! जरा इसे दो मिनटकी छुट्टी तो दे दीजिए'। मैं प्रसन्न हो उठा, यह सोचकर कि भगवानने मेरी पुकार सुन ली। लेकिन मैं ज्योंही कमरेसे बाहर बरामदेमें आया, मैं उनका चेहरा देखकर काँप उठा क्योंकि वह क्रोधसे तमतमा रहा था। मैं बहुत डर गया और खड़ा होकर शायद सज़ाकी प्रतीक्षामें अपराधी-सा उनकी ओर देखने लगा। कुछ देरतक देखकर वे बड़े नर्म स्वरमें बोले—"आइये आइये, डर क्यों गये?" और वे तेजीसे चल पड़े एक ओर गलीमें जिसमें उनका घर था। कुछ तो डरसे और कुछ ठिगना होनेके कारण मैं पिछड़ जाता था लेकिन उनकी निगाह घूमते ही मैं दौड़कर उनका हाथ पकड़ लेता था। रास्ते भर न मुझसे कुछ नहीं कहा, लेकिन

वह लो फलागसे रास्ता मेरे लिए कितना कष्टदायी रहा होगा, इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि वह आज तक मुझे याद है। उस गलीमें जिसमें अँधेरा उमड रहा था और मच्छर भूँ-भूँ कर रहे थे, मैं कितना बेचैन लिये भाग रहा था, यह मैं आज भी नहीं भूलता। सोचता था कहीं कमलाने शिकायत तो नहीं कर दी है। कैसी शिकायत करेगी वह? मैंने उसे मारा तो है नहीं। फिर इधर मुझमें उससे झगडा भी तो नहीं हुआ। कभी सोचता था शायद उसे कहीं चोट लग गयी हो और उसने खुद बचनेके लिए मेरा नाम लगा दिया हो। कभी सोचता हो सकता है उसमें कुछ नुकसान हो गया हो, कोई चीज़ टूट गई हो, कोई चीज़ खो गयी हो या कोई चीज़ उसने चुराकर खा ली हो और खुद सज़ासे बचनेके लिए उसने मेरा नाम लगा दिया हो। बस इतना ही मेरी उस समयकी मानसिक परिधि थी। इससे आगे मैं नहीं सोच सकता था। परेशान और डरा हुआ, जब मैं मकान में पहुँचा तो मैंने देखा, मकानके बडे आँगनमें चारपाईपर उसकी माँ बैठी पानदान बन्द कर रही है। एक पतली छडी पासमें रखी है। कमलाके हाथ बँधे हैं और वह ज़ोर ज़ोरसे सिसकियाँ भर रही है जैसे उसने बहुत मार खायी हो। उस समय उसे देखकर मुझे तरस नहीं आया बल्कि मैं और डर गया। उसके पिताने कहा—

"लो इससे पूछ लो।"

माँने बड़ इतमीनानसे कहा, "तुम्हीं न पूछ लो।"

"मैं क्यों पूछूँ? तुम्हीं अपना निगियाको बहुत तरफदारी करती हो। तुम्हीं पूछो न।" और इतना कहकर वे तेज़ीसे घूमने लगे।

थोड़ी देर तक सन्नाटा छा गया। सब चुप थे। केवल कमला सिसकियाँ भर रही थी। कोनेका अधजला दीप, आँगनका नीचा नाचा दालानें, अँधेरेसे भरा हुआ बगीचा, पिंजड़ेमें टँगा हुआ तोता सब मेरी तरह सहम-सहम कर देख रहे थे। मैंने एक बार उसकी ओर आँख उठाया लेकिन वह आँखें नीची किये रोती ही जा रही थी। उस खामोशीमें मेरा डर बढ़ता जा रहा था, मेरी टाँगें काँप रही थीं। आखिरकार उसकी माँ बोली बड़े प्यारसे—

"बेटा, तू कल यहाँ आया था। सच-सच बोलना।" पता नहीं क्या मेरे मुँहसे आवाज नहीं निकली। वे फिर बोलीं—

"जब हम और लोग तेरे घर गये थे, तब तुम और कमला साँकल खोलकर चुपचाप मकानमें आये थे। झूठ मत बोलना। महाराजने सब देख लिया है। वह बता रहा था।"

मैंने कहा, "जी हाँ।"

उनके बाप बोले—"तुमसे किसने कहा था आनेके लिए?" उनकी आवाज बहुत कड़ी थी। घबराकर डरके मारे मैंने जवाब दिया "कमलाने"। क्यों? यह मैं आज तक नहीं समझ पाया। शायद मैं डर रहा था कि कहीं मेरे ऊपर न कोई आफत आ जाय। उसके पिता मेरा उत्तर सुनकर जोरसे चिल्लाये—

"देख लिया, अपनी लड़कीकी करतूत!" और उसकी ओर घूर-घूरकर तेजीसे घूमने लगे।

माँ बोली, "क्या करने आया था।"

मैंने कहा, "यों ही खेलने।"

उन्होंने फिर पूछा, "क्या खेलने?"

मैंने फौरन जवाब दिया, "घरौंदा।" क्योंकि ये दोनों बातें हो सकती थीं। दीवाली समीप थी। हम लोग घरौंदे बनाते थे। मैं हमेशा कागज, चमकीली पन्नी और दफ्ती आदिका घरौंदा बनाता था। मेरे पिताकी दूकानपर अक्सर शीशेकी पैकिंगके चौड़े बक्स आते थे, जिन्हें वे एकके ऊपर एक रखकर कार्नेस जड़कर आलमारी सी बना देते थे। सामने झालर, रूपहले दर, लाल हरे कागजकी फूल पत्तियां, सुनहरी रुपहली पन्नियोंके सिंहासन आदि और इस प्रकार मेरा घरौंदा सजता था। माता पिता भी थोड़ा बहुत हाथ बँटा देते थे। दीवाली खत्म होनेके बाद खिलौने निकाल लिये जाते थे और हम इनमें किताबें रखते थे। कमलाने भी घरौंदा बनाया था लेकिन मिट्टीका। दो कोठेका घरौंदा था उसका जो दालानमें एक कोनेमें बना था। लम्बे-लम्बे ईटें रखकर उसने दीवार बना ली थी, उस पर मिट्टी चढ़ा चूनाकारी भी हो गयी थी। बीच बीचमें गेरू घोलकर उसने फूल पत्तियां बनायी थीं। चाँद सूरज तारे आदि घरौंदेके ऊपर दीवार रूपी आकाशमें बने थे। उस दिन भर घर पता नहीं क्या था। तमाम औरतें आयी थीं। कमला, उसकी बड़ी बहन और माँ भी आयी थीं। सब लोग घर अपने अपने काममें लगे थे, मैं कमलाको अपना घरौंदा दिखा रहा था और समझा रहा था, कैसे उसमें पातल्दी(?) घर लगेगी, कब जब बनेगा तब भगवान्के खानेका समय होगा। भीतर कहाँ खाया जायगा और कब ज्यादा रात हो जाने पर भगवान् सोयेंगे। कहाँ लक्ष्मी जी सोयेंगी, कहाँ गणेश जी सोयेंगे। कौन सा तकिया, बाहर लक्ष्मी जी का है और कौन सा गणेशजी का, आदि-आदि।

मेरे घरौंदेकी देख-देख उसके मनमें अपना घरौंदा भी दिखानेकी इच्छा हो रही थी। उसके घरौंदेके लिए जब मित्र और मालकरा पता चला था तब मैंने देखा था। उसके बारेमें मैं उसके यहाँ नहीं गया था। स्कूलके बाद घरका काम करना पड़ता था। नौकर था नहीं। गली पार करके हाट-बाजार था जहाँ सबेरे शाम गल्ला धनिया, नमक, हल्दी तेल, तरकारी आदि का काम पड़ता था, सब लाना पड़ता था। उसमें परिचित थीं, न आना था। स्कूल मास्टर और माली मजदूर वगैरहमें जुटे थे। उसके माता पिता कड़ी निगरानी रखते थे। घरसे बाहर निकलने नहीं देते थे। उनका ख्याल था इधर-उधर लड़कोंके साथ खेलकर मैं आवारा हो जाऊँगा, गाली सीख जाऊँगा इत्यादि। खैर, मैं उसका घरौंदा नहीं देख सका था। उसने कहा, "चलो मेरा घरौंदा देख आओ। तुमसे तो अच्छा नहीं है लेकिन मेरे गणेश जी तुम्हारेसे बहुत अच्छे हैं।" मैंने कहा, 'चलो'।

और हम लोग छिपा तौर साँकल खोल घरसे, सुनसान अन्दर घरमें घुस गये थे। घरौंदा सामनेकी चारदीवारीमें एक ताक बिठा था जिस पर उसने अपनी माँकी कोट फटी धोती डाल दी था, उस पर हम लोग बैठ गये और मैं उसके गणेश जीको देख देखकर हँस रहा था। कह रहा था, "गणेश हैं या घासीराम, ताड़ निकला है उनका"। और उसका मिट्टीका घरौंदा मैंने कुछ भी नादान मन पड़ जो मुझे मालूम पड़ता उसमें न था जिस पर थ। माता पिता आदमसाता थे, लेकिन मन्ना पूछ-पूछ रहा था और मैं पड़ इधर सबकी तरह रहके निकलने उस घरमें पाता

रस पूजा करता था। और उसके बाद दरवाजा खुला और महरिन काम करने आयी थी और हम लोग उठकर चले गये थे। कुल इतनी ही बात थी। लेकिन उनके पिता मेरा "घरौंदा," उत्तर सुनकर ज़ोरसे चिल्लाये, "यह सब मैं जानता हूँ।" और फिर अपनी पत्नीसे बोले—

"यह तो मैं पहले ही जानता था। यह सब उसकी ही शरारत है, अभी इस वयस ही उसके ये हाल हैं। बदमाश, चुड़ैल कहीं की। टांग तोड़ दो उसकी जो यह कलसे घरसे बाहर निकले।' उनकी माँ कुछ नहीं बोलीं, केवल मुझसे इतना कहा, "जाओ"। मैं मुक्ति पाये पंछीकी तरह भागा। एक लम्बा दालान पड़ता था दरवाजे तक पहुँचनेमें। जब मैं दरवाजे तक पहुँचा तो कमलाके चीखकर रोनेकी आवाज सुनाई दी। मैं रुक गया। मैंने उसके गाल पर पड़ी हुई ज़ोरकी चपतकी आवाज सुनी और उसके बाद उसके पिताका ज़ोरसे गरजना, "मैं पूछता हूँ आखिर कोनेमें छिपा घरौंदेमें बैठी उसके साथ क्या कर रही थी'। इतना सुनकर मैं चला गया। मैं उस समय यह न समझ सका कि आखिर हमने क्या गुनाह किया था, उनका क्या मतलब था। पर आज बात समझमें आती है और उनकी बेवकूफी पर तरस भी आता है। उसके बाद लगभग दस दिन बाद मेरी कमलासे मुलाकात हुई, वह बहुत गम्भीर थी। उसकी चंचलता पता नहीं कहाँ उड़ गयी थी। वह माँके पास अपनी बड़ी बहनके साथ कुछ लेने आयी थी। मेरे कमरेमें भी वह आयी। मैं नयी नयी कापियों पर कागज़ चढ़ा रहा था। मेरे पास वह खड़ी रही चुपचाप खामोश। मैं भी चुप

चुप था। यद्यपि उसे ज्वर फिर उठ रहा था। उसने पूछा—

"तुम्हें तो नहीं मारा नानूजीने।"

मैंने कहा, "नहीं।"

कुछ देर रुककर मैंने फिर पूछा—

"तुझे मारा क्यों था, कमला?"

वह बोली—"पता नहीं क्यों? कहते थे लड़कोंके साथ अकेलेमें नहीं खेलना चाहिए"। फिर वह चली गयी। मैंने उस दिन अपनी माँसे पूछा, उसने भी कहा—"लड़के लड़कियोंके साथ नहीं खेलते।" और तबसे लड़कियोंके साथ खेलते समय मैं सोचता यह बुरा है और अक्सर अपने साथ खेलने वाली लड़कियोंसे मैं कह देता, "मैं लड़का हूँ तुम्हारे साथ नहीं खेलूँगा।"

उसके बाद फिर कमलासे मुलाकात नहीं हुई। शायद वे लोग मकान छोड़कर किसी दूसरी तहसीलमें चले गये थे। बचपनके दिनोंमें साथी बनते और छूटते देर नहीं लगती। न जाने कितने साथी बनते हैं न जाने कितने छूट जाते हैं, भविष्यमें उनका कोई लम्बा-चौड़ा हम नहीं रख पाते। फिर और नये-नये साथी बने, लेकिन कोई ऐसा साथी नहीं बना जो स्मृति रूपमें भी मेरे मस्तिष्कमें टिका रहता। इसका कारण मेरी गम्भीर प्रकृति थी। खेल-कूदसे मुझे विशेष शौक नहीं था, फिर ऐसे लड़कोंके और कम साथी होते भी हैं जो खेल-कूदमें भाग न लेते हों। चार-पाँच साल तक फिर कमलाका कोई पता न रहा। उसके बाद जब मैं नौवीं क्लासमें था, कोई वकील थे उनके यहाँ एक शादी पड़ी। मुझे भी माँके

साथ जाना पडा। माँने बताया, कमला और उसकी माँ भी आयी है। लडकेकी शादी थी। बारात कल बाहर गयी थी। घरपर रात रात भर औरतें गाती बजाती थी। मैं बाहर ड्राइंगरूममें बैठता था।

किसी काममें मैं माँके पास एक क्षणको भीतर गया। मैंने देखा, तमाम औरतें बैठी हैं और उनके बीचमें कमला नाच रही है। मुझे आज भी उसका वह रूप नहीं भूलता। गौरवर्ण, अत्यन्त सुन्दर, हँसमुख मूरत और गज़बका शृंगार। उसे देखकर मैं फौरन ठिठक गया। एक लडकी जब नाच रही हो तब वहाँ खडे होकर देखना मेरे संस्कारके विरुद्ध था। मैं कमरेके बाहर निकल आया। यद्यपि मेरा जी कमलाका नृत्य देखनेको करता था। इसलिये कुछ देर दरवाज़ेकी दराज़से देखता रहा। उस समयकी दृष्टि आलोचना की नहीं प्रशंसाकी थी। लेकिन मनप्रशने मुझे वह नाच न देखने दिया। यह सोच कर कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे? और फिर इसतरह छुप छिप कर लडकीका नाच देखते हुए। मैं चला आया। अपनेको कितना दबाया था मैंने, यह आज मुझे महसूस हो रहा है। दूसरे दिन माँने कहा—

"कमला तुझे पूछ रही थी।"

मैं खामोश रहा। इसका जवाब ही क्या हो सकता है। वे फिर बोलीं, "सुना है तूने, कमला नाचती बहुत अच्छा है, पता नहीं इस देहातमें रह कर उसने यह सब कहाँसे सीखा है।" कुछ रुक कर बोलीं—

"गाती भी बहुत अच्छा है। मगर बडी बेहया हो गयी है। शरम तो उसमें है ही नहीं। मैंने तो उसकी माँसे कह दिया

नाचना-गाना बुरा नहीं पर ज्यादा मत उलझाओ नहीं तो बिगड़ जायगी।"

इसके बाद फिर पाँच साल तक कमला नहीं मिली। इन पाँच वर्षोंमें मेरी ज़िन्दगी बिल्कुल ही बदल गयी। मैं क्यासे क्या हो गया, इसका अनुमान भी लगाना कठिन है। ज़िन्दगीके नये-नये पर्दे खुले, नयी नयी चीज़ें आयीं, उनका आकर्षण इतना प्रबल था कि मेरे हृदयमें कमलाका रहा सहा अस्तित्व भी समाप्त हो गया। एक घटना याद आ रही है। मैं उस शहरमें गया हुआ था जहाँ कमलाके पिता बदल कर आ गये थे। उनके विभागमें हर दूसरे-तीसरे वर्ष बदली हुआ करती थी। मैं अपने चाचाके यहाँ ठहरा था। एक दिन साँझके समय उन्होंने कहा—"आओ चलो घूम आयें?"

मैंने कहा, "कहाँ जायँगे?"

वे बोले, "ब्रजकिशोरके यहाँ।"

"कौन ब्रजकिशोर?" मैं कुछ सोचता हुआ बोला।

"तेरे घरके पड़ोसमें वे बहुत दिन रहे हैं, तू नहीं जानता?"

उन्होंने आश्चर्यसे कहा। मुझे याद आ गया ब्रजकिशोर कमलाके पिताका नाम है।

मैंने कहा, "कितनी दूर है उनका घर?"

उन्होंने कहा "दो मील।"

मैंने कहा था "आप हो आइये। दो मील जानेकी मेरी हिम्मत नहीं। दो फर्लांग होता तो सोचता।"

आज मैं सोचता हूँ कमलाके लिए कुछ दूर चलने तककी तकलीफ मैं नहीं उठा सकता था। इतना भी स्नेह उसके लिए मेरे दिलमें नहीं था जब कि बेकार मैं न जाने कितना इधर उधर घूमा करता था। चाचा चले गये और मैं पड़ा पड़ा ग्रामोफोन पर पिटे हुए रेकार्ड बजाता रहा। जैसे कमलाकी मुलाकातसे उन्हें बजाना ज्यादा कीमती हो।

दो महीने बाद मुझे फिर किन्हीं छुट्टियोंमें चाचाके पास जाना पड़ा। किसी बातके अवसर पर वह कहने लगे।

"उस बार तेरा जिक्र मैंने ब्रजकिशोरके यहाँ किया था। मैंने बताया राजन आया है पर कुछ थका हुआ था इसलिए नहीं आया। वे लोग तो कुछ नहीं बोले। लेकिन उनकी लड़की कमला है न, वह जैसे तेरे न जानेसे कुछ चिढ़ी थी, कह रही थी—'हाँ साहब बड़े आदमी हैं। पर न घिस जाते इतनी दूर तक आते हुए। अगर वह कल रहें तो उनको आप अवश्य भेज दीजियेगा नहीं तो जब फिर आयें तब कहियेगा कमलाने बुलाया है, अगर इस पर भी न आयें तो मुझे इत्तला कीजियेगा मैं खुद आऊँगी। यह क्या इन्सानियत है कि चार बार वह यहाँ आ चुके लेकिन यहाँ एक बार भी नहीं आये। जैसे यह उनका घर ही न हो। हम लोगोंसे उन्हें कोई मतलब ही न हो।" चाचा इतना कहकर खामोश हो गये, कुछ और काम करने लग गये और मैं सोच रहा था कि कितनी आत्मीयता है इस सन्देशमें। चाचा चलतेमें कह रहे थे, "बड़ी मुँहफट लड़की है, ऐसा बातूनी लड़का तो मैंने कहीं देखी नहीं, काफी इन्टेलिजेन्ट भी है।"

चाची बोलीं, "जो भी हो। मैंने तो उसकी बहुत बदनामी सुनी है। तमाम कालेजके लड़के उसके पीछे पड़े रहते हैं। उसकी माँ कह रही थी बड़ा आफत है इस लड़कीके मारे। कहीं शादी कर देती तो छुटकारा मिलता पर इनके बाप घर बैठे लड़का पाना चाहते हैं।"

चाचा बोले, "यहाँ मिस्टर ब्रजकिशोरकी गलती है। क्या उसे इधर-उधर कानफरेंस वगैरहमें नाचने-गाने जाने देते हैं? जमाना नाजुक है, लड़कियोंको तनिक भी आजादी नहीं देनी चाहिए।"

चाची बोलीं "वे बिचारे तो नहीं चाहते पर उसके आगे किसीकी चलती नहीं।"

"लड़कीके आगे माँ-बापकी न चले!" चाचा कह कर हँसने लगे। चाची बोलीं, "बात तो कुछ ऐसी ही है। वह बहस करने लगती है, माँ बाप कोई जवाब नहीं दे पाते। फिर जवान लड़की पर सख्ती भी तो नहीं की जा सकती।"

मैंने चाचा चाचीकी ये बातें सुनीं और सुनकर कमलाके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गयी। क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हमारे समाजमें एक बहुत बड़ा दल ऐसा है जिसका काम ही कुमारी लड़कियोंको बदनाम करना होता है। मुझे हर ऐसे आदमीसे नफरत है जो किसी लड़कीके बारेमें बात करते समय उसके चरित्र पर आक्षेप करता है। फिर अभी हमारे समाजमें आदमीके रूपमें कीड़े फूट रहे हैं। कहना क्या है, इसे वे क्या समझें? दूसरोंका आदम इनकी कुत्सित मनोवृत्तियाँ वह गन्दगी तैयार करती हैं जिसमें ये नरकके कीड़े रेंगते हैं। हमें तो आज ऐसे आदमी चाहिए जो

कलाकी उन्नति करें, किसी भी अवरोधकी परवाह न करें और उनको जो अपनी संकीर्णताके कारण कला या कलाकारका अपमान करते हैं ऐसी ठोकर मारें कि आँख खुलने पर गन्दगी भरी दुनिया भी उन्हें फूलोंका भरा लगने लगे।

मैंने उसी क्षण निश्चय किया कि मैं इस बार कमलासे अवश्य मिलूँगा। पर कुछ ऐसे कारण आ गये कि मुझे बिना मिले ही चला आना पड़ा। फिर पूरे एक वर्ष तक मैं चाचाके पास भी नहीं जा सका। इस बार यद्यपि कमलाको देखनेकी इच्छा थी। बी० ए० की परीक्षा देकर जब मैं गर्मीकी छुट्टियोंसे घर गया तो पिताने कहा, "तू पयानपुर चला जा। ब्रजकिशोरका निमन्त्रण आया है। खुद भी बेचारे कई बार कह चुके हैं। हम लोगोंके तो जानेमें बड़ा झंझट है पर किसीका जाना ज़रूरी है। उनकी लड़कीकी शादी है।" मैंने पूछा, "बड़ी लड़की की।" उन्होंने कहा, "नहीं, कमला की।"

मुझे आमतौरसे विवाह शादीमें जानेमें तकलीफ होती है पर पता नहीं किस प्रेरणासे मैं वहाँ एक दिवस पहले ही पहुँच गया। वह एक तहसील थी। देहात और शहर दोनोंका मिश्रण। लोगोंने मुझे दस साल बाद देखा था, अतः जल्दी पहचाना नहीं। फिर तो बाहर अपनी प्रकृतिके कारण मैंने बहुतसे काम ओढ़ लिये। बरात लारीमें आयी थी। पूरी शादी खतम हो गयी पर मैं कमलाको देख न सका। भाँवरोंके समय रात अधिक हो जानेसे सो गया और फिर जनवासेका देखभाल करना मेरी ड्यूटी था, अतः मुझे वहीं बना रहना पड़ा। चलते समय दोनों दलोंमें काफी

थगडा-सा हो गया। लडकेवाले लडकी साथ ले जाना चाहते थे और लडकीवालोका कहना था कि विदा नहीं होगा। लडकीकी तबीअत खराब है, एक तो इतना लम्बा सफर फिर त्याका कम भग हो जायगा, उसका विदा फिर हो जायगा। उन्हें लडकीको मारना नहीं है। लेकिन आखिरकार लडकेवालोकी हो जात हुई। कमलाका निबाह करना हो पडा।

घरमे स्टेशन ला माल था। बारातको पहुँचाने मुझे भी स्टेशन जाना पडा। क्योंकि सामान अधिक था और उसी गाडामे लाहौर 'बुक' करना था। स्टेशन पहुँच कर मालूम हुआ कि गाडी चार घटे 'लेट' है। छोटा स्टेशन। स्टेशन मास्टरकी इच्छा पूरा कर देने पर वे स्वय य सब काम करने लगे। म मुक्त हो गया। स्टेशनके पाछे आमके घने छायादार वृक्ष थे। वहीं पर दरियाँ बिछीं। सुबह सात बजेका समय था। चार घटे लेट होनेके कारण गाडी ग्यारह बजे आती। अब सारे बराती, बरातिनाके भोजन आदिका प्रबन्ध करनेमे लग गये। बरातियोमे कुछ स्नान करने, और लोग इन्तजाम करने और बाकी गप्प मारने बैठ गये। कमलाकी पालकी एक कोनेमें, एक पेडकी आडमे सबसे अलग दूर रक्खी थी। मेरे दिलमे रह-रह कर कमलासे इस घडी बात करके उसका मिल लेनेकी इच्छा उठ रही थी फिर वह बीमार भी तो थी। पर हिम्मत नहीं पड़ रही थी। उससे जो एक नववधू हो, उससे जो दुनियाकी नजरमे गैर हो, बात करना मुझ एक गुनाह लगता था। तभी एक नौकरानी जो पालकीके साथ आयी थी, आकर कहा, आपको

'बहिन' बुला रही है। मैं चला गया। समीप पहुँचते ही एक बड़ा धीमा और मीठा स्वर सुनायी दिया। उसने कहा—

'आओ, अब तो तुम बहुत बड़े हो गये।" और इतना कह कर उसने पालकीका एक तरफका पर्दा बिल्कुल उठा लिया और बोली, "आओ बैठ जाओ।" मैं झिझकते झिझकते बैठ गया। उसने किसी प्रकारके आडम्बरका प्रदर्शन नहीं किया, नमस्कार तक नहीं। उसके इस पहले वाक्यने दस सालकी दूरी मिटा दी। मैं कुछ संयत होते हुए बोला—

"तुम्हीं कौन छोटी रह गयी हो।" वह एक फीकी हँसी हँस पड़ी। वह एक उन्नाबी सलवार और ओढ़ना पहने थी। बहुत दुबली, कमजोर और पीली लग रही थी। वधू की तरह वह तमाम आभूषणोंसे सजी थी। मैंने यों ही बात चलानेको कहा—

'सलवार कबसे पहनने लगी हो ?"

"लाहौर का है," व्यंग्यसे वह बोली।

मैं चुप रहा। उसने नौकरानीको बुलाकर कहा—"उधर चली जाओ, किसीको इधर मत आने देना।" फिर बोली—

"दस साल बाद मिल रहे हो। लड़की न होती तो तब देखती कैसे नहीं मिलते ?" मैं चुप रहा। मेरी आँखोंके सामने तमाम पिछली बातें नाचने लगीं।

"मेरे घरके पास तक आते थे पर मेरे यहाँ आनेमें तुम्हारे पैर थकते थे। बुलाया तब भी नहीं आये। आज भी अगर न बुलाती तो शायद नहीं आते ?" मैं कुछ बोल न सका। इतने

मुझसे शिकायत करनेवाले भी जीवनमें कहाँ मिलते हैं ? वह फिर बोली—

"मेरी शादीमें कैसे आ गये। अच्छा हुआ चले आये। बहुत मानता मानी थी, तुम किसी तरह आ जाते तुम्हें देख लेती चल्ला यार।" यह 'चल्ला यार' उसने कितनी दर्द भरी आवाजमें कहा था। वह कुछ रुक कर फिर कहने लगी—

"तुम जैसे ही आये मुझे मालूम हो गया। यद्यपि भीतर नहीं आये तुम। मिठाई भिजवाई थी। सोचा कौन जाने लोग काम काजमें भूल जायँ और तुम शर्म और तकल्लुफकी वजहसे यों ही रह जाओ।" मुझे याद आया, जब मैं आया था तब नाश्ता कर लेनेके बाद एक नाश्ता और आया था। नौकरानीने पूछने पर कहा था, "भीतरसे भेजा है।" मैंने समझा मौसा जी ने भेजा होगा। और यह भीतर वाला नाश्ता ही मैं ठीकसे कर सका था क्योंकि यह अच्छा था। विवाह आदिमें दो प्रकारकी चीजें बना करती हैं। कुछ मामूली और कुछ खास ढंगसे। वह कहती रही—

"समझमें नहीं आता तुममें इतनी शर्म क्या है? ईश्वरको चाहिए था तुमको लड़का बनाता, मुझको लड़की।" इतना कहकर वह हँस पड़ी। पर मैं खामोश ही रहा। उसने पूछा—

"ये चुप्पी क्या? कुछ कलाम लिख रहे हो। तुम्हारे बारेमें तो सुना था तुम काफी खुशमिजाज हो।"

मैंने कहा, "बचपनकी बातें याद आ रही हैं।" वह पुलक उठी "सच तुम्हें बचपनकी सब बातें याद हैं। मैं तो जानती थी

भूल गये होगे। तभी न निकट रहकर भी तुम्हारे लिए कमला मर गयी थी।"

मैंने कहा, "चुप रहो, क्या बकती हो।"

वह बोली, "गलत कहती हूँ क्या? या तो अपनेको बड़े आदमी समझते रहे होगे। सोचते होंगे कालेजमें पढ़ता हूँ और वह एक मामूली पढ़ी लिखी देहाती लड़की, उससे दूर ही रहना अच्छा। ज्यादा पढ़ लेनेसे तुम्हें घमंड हो गया है। यहाँ तो गँवार ही रह गयी। बहुत चाहा, बहुत सर पटका पर मेरी चली ही नहीं। काश, मैं भी कालेजमें पढ़ पाती!" इतना कहते कहते उसकी आवाज डूब गयी। मैंने देखा जैसे वह व्यथासे भर उठी है।

मैंने कहा, "अच्छा चुप भी रहो, बहुत कह चुकी हो।" फिर जैसे वह सचमुच यह प्रसंग टालकर अपनेको हलका करती हुई बोली—

"शादी कब करोगे?"

मैंने कहा, "मैं शादी करूँगा ही नहीं।"

"क्या क्या किसीसे मोहब्बत हो गया है?"

"नहीं तो।"

वह हँसते हुए बोली, "मैंने सोचा शायद कालेजमें किसीसे मोहब्बत हो गया हो।"

मैं बोला, "क्या कालेज मोहब्बत करनेकी जगह है?"

उसने कहा, "लड़के तो यही समझते हैं।" उसका यह जवाब सुनकर मैं चुप हो गया। थोड़ी देर बाद बोला—

"तुमने किसीसे मोहब्बत की है।"

"कोई इस लायक मिला ही नहीं।" वह मुसकराते हुए बोली। मैंने कहा, "मैंने तो सुना था तुम्हारा किसीसे मोहब्बत हो गयी है।"

उसने कुछ कड़ी आवाजमें कहा, "यह नहीं सुना मैं आवारा हूँ, बदनाम हूँ? कि एक नहीं, न जाने कितने लड़कोंसे मेरा सम्बन्ध है? इधर उधर कानफरेंसोंमें नाचती-गाती फिरती हूँ?" मेरा चेहरा फक पड़ गया। मैंने उसके मुखकी ओर देखा जिसमें घोर उपेक्षा और घृणाके चिह्न थे। मैंने बात बदलनेकी गरजसे कुछ स्नेहसे पूछा, "तुमने नृत्य-कला कहाँसे सीखी? कमला, मैंने तुम्हारे नृत्यकी बड़ी तारीफ सुना है।" मेरी बात सुनकर वह न हँसी न मुसकरायी, वैसे ही गम्भीरतापूर्वक बोली—

"मास्टर कहाँ है? लेकिन सीखना चाहती थी। इतने ही पर तो यह हाल है—अगर सीखना तो क्या होता? अब उस जन्ममें सीखूँगी।" इतना कहते-कहते उसकी आवाज जैसे उच्छ्वासके समुद्रमें डूब गयी और वह इतना पैनी दृष्टिसे शून्यमें देखने लगी कि मैं सहम गया। उसके चेहरे पर जैसे पत्थरकी छाती फाड़कर भी निर्झर दर्द उमड़ आया था। मेरे मुखसे निकल पड़ा—

"कमला!"

उसने कहा, "क्यों?"

मैंने कहा, "तुम्हारी तबीयत खराब है—लेट जाओ।"

उसने कहा, "क्या? क्या लेटनेसे तबीयत अच्छी हो जायगी?"

मैंने कहा, "हाँ आराम तो मिलेगा न।"

वह बोली, "मुझे आराम नहीं चाहिए। और अगर लेटना ही होगा तो एक साथ चितामें ही लेटूँगा।" उसकी आँखें वैसी ही बनी रहीं निस्तेज, पैनी, शून्यको फाड़कर खा जानेकी प्रतीक्षामें। मैं घबरा उठा।

मैंने कहा, "कमल, गम्भीर मत बनो। थोड़ा देरके लिए तो मेरे सामने खुश रहो।" मेरा इतना कहना था कि वह खिल खिलाकर हँस पड़ा। लेकिन ऐसी हँसी जिसके पीछे कोई अनुभूति नहीं। भयानक। शिकारियोंके हमले सी। मैं सर झुका कर बैठ गया। मुझे परेशान देख वह कुछ शान्त होकर बोला—

"जानते हो मैं कहाँ जा रहा हूँ।"

मैंने मुसकराकर कहा, "लाहौर।"

वह भी बोला कुछ मुसकराकर, "नहीं जी, मरने।"

मैंने कहा, 'चुप रहो। क्या मरने मरने लगायी। शुभ अवसरों पर ऐसी बातें नहीं की जातीं। तबीयत तो यों ही खराब हो जाती है। वहाँ पहुँचोगो सब ठीक हो जायगा।"

वह बोला, "यह तबीयत ठीक होनेके लिए खराब नहीं हुई है।"

मैंने कुछ झल्लाकर कहा, ' कैसे ?"

उसने कहा, 'मुझे टी० बी० है।"

मैं चौंक उठा, पर संयत होकर बोला, "तो क्या हुआ ? हौसला रक्खो अच्छा हो जाओगे।"

वह बोला, "हौसला ही तो नहीं है। फिर एक गँवार और

देहाती बनकर जीनेसे मरना ही अच्छा।" कहकर वह एक फीकी हँसी हँसने लगी।

तभी अचानक उसके पति पर दृष्टि गयी जो कुछ दूर पर खड़े खड़े किसीसे बातें कर रहे थे। नाटे और मोटे, सूट पहने हुए। बड़े भद्दे। कमला जितनी ही दुबली पतली, सुन्दर थी, वह उतने ही नाटे मोटे और भद्दे थे। पढ़े भी थे तो शायद हाई स्कूल फेल। रुपया था, व्यापार करते थे।

मैंने पूँछा, "देखा उनको—पसन्द है ?"

वह हँस पड़ी और मुँह बिचका कर बोला, "इस गणेश जी ऐसे हैं—मोटे थमधूसर।" मैं भी हँसने लगा।

मैंने कहा— "शादीके पहले नहीं देखा था ?" उसने 'न' सूचक गर्दन हिलायी। फिर बोली—

"शादीमें लड़कियोंसे कौन पूछता है ? फिर मुझमें किसकी हिम्मत थी, जानते ही थे मैं मना कर देती। खैर, बाबूजीकी सर की बला टली। बेचारोंकी बड़ा बदनामी हो रही थी। ये लोग भी अच्छे ही हैं—केवल सूरत पसन्द कर, दहेज-ओहेज भी नहीं लिया।"

तभी मुझे ऐसा लगा, जैसे कुछ लोग मुझे खोज रहे हैं क्योंकि गाड़ी आनेका समय हो गया था। मैं उठनेको हुआ। मगर दिल भर आया था। उस थोड़ी देरकी बातचीतने मुझे दर्दसे भर दिया था।

मैंने पूछा, "मेरे लायक कोई सेवा।"

वह फिर फीकी हँसीमें बोली, "मेरे लिए ? मेरे लिए अब

कुछ नहीं चाहिए। मैंने जो जो चाहा मुझे नहीं मिला, मुझे नहीं दिया गया। और अब आखिरी वक्त में जरूरत भी क्या ?" कुछ रुककर फिर बोली, "तुम्हारे चाचा कहते रहते थे तुम लेखक हो रहे हो। अखबारोंमें काफी लिखते पढ़ते हो। मैं तो रह गयी। बहुत सी चीजें कहना चाहती थी, लिखना चाहती थी, पर इस लायक नहीं हूँ। कुछ ऐसा करो कि यह दुनिया बदल सके, हम स्त्रियोंकी आवाज भी लोग सुनें और सुननेकी जरूरत समझें। काश! मैं तुम्हारी तरह होती तो दुनियाको बताती कि ऐसी ज़िन्दगीसे लड़की का गला घोंटकर मार डालना अच्छा है।"

मेरी आँखोंसे आँसू निकल पड़े और मैं एक क्षण भी अधिक ठहरनेमें अपनेको असमर्थ पाकर तेजीसे चला आया और काम करने लगा। गाड़ी चलते समय उसने इशारा किया। मैं डब्बेके साथ दौड़ने लगा। उसने कहा, "देखो भूलना नहीं चाहे कमला मर भी जाय।" और फफक कर रो पड़ी। मैं पीछे छूट गया और वह आँखोंसे खो गयी।

आज जब कमला मर गया। जाने आता है मैं यह वाक्य 'कमला मर गया' बार-बार दोहराऊँ। तब तक दोहराऊँ जबतक दुनिया उसे सुनकर यह न सोचने लगे कि आखिर वह क्या मर गयी। एक पौधा था जिसे पनपने नहीं दिया गया, जिसे कुचला गया, जो अन्तिम साँस तक इस कुचले जानेके खिलाफ विद्रोह करता रहा और दुनिया जिस पर हँसती रही और आज जिसे भूल गया। माँने इसकी जरूरत भी नहीं समझी कि कमलाका मरना दो लाइनमें लिख देता। कुछ ऐसा लिखनी जिसमें कुछ

विचार होता, कुछ अनुभूति होती, कुछ संवेदना होती। पर यह 'कमला मर गया'—विचार शून्य, हृदय शून्य, संवेदना शून्य-सा वाक्य—ऐसी तो न जाने कितनी 'कमलाएँ' रोज मरती हैं। कोई कहाँ तक सोचे। पर पर कमला, जैसे लगता है तुम मर गयी तो कोई बात नहीं पर न मरती तो अच्छा था। खैर अब तो कमला मर ही गयी। काश, वह अब भी जीती रहती। पर जीती कैसे?

टूटे हुए पंख

मेरी आँखोंमें आजकी शाम जल रही है। भावनाएँ इस नदीकी भाँति जिसके किनारे मैं एक टूटे हुए पत्थर पर बैठा हूँ, उमड़ उठी हैं। सूरज डूब रहा है। नदीकी लहरें लाल हो गयी हैं। दिनके सपनोंका कफन बन कर खामोशी चारों ओर छाने लगी है। नदीकी बीच धारामें एक बाँस पड़ा है, जिसपर कबूतरोंकी पंक्ति बैठी हुई जल-क्रीड़ा कर रही है। शायद इनके लिए ही यह बाँस डाल दिया गया है जो कि नीचे ही-नीचे तार द्वारा घाटसे बँधा है। मेरी आँखें इन कबूतरोंपर जम-सी गयी हैं। डूबते हुए सूरजकी लाल रेशमी किरणें उनके फड़फड़ाते हुए पंखों पर झलमला रही हैं। ये कबूतर छोटे छोटे गोल घेरोंमें उड़ उड़ कर लहरोंमें डुबकियाँ लेते हैं और बाँसपर आ बैठते हैं। उनके फड़फड़ाते हुए पंख ही इस खामोशीको भंग कर रहे हैं। कितने प्यारे लगते हैं ये! खुशीसे भरे हुए, मस्तीमें सराबोर। काश, आदमीकी ज़िन्दगी भी ऐसी ही होती, उसे भी दुनिया उतनी ही अच्छी लगती जितनी इन कबूतरोंको ये लहरें लग रही हैं। उसकी जिन्दगीमें भी कोई ऐसा आधार होता जहाँ वह जीवनके संघर्षमें डुबकियाँ लगा शान्तिपूर्वक बैठ अपने पंख फड़फड़ा सकता। लगता है मैं गलती कर रहा हूँ। सबके जीवनमें एक निश्चित आधार है। सबको दुनिया अच्छी लगती है, खुशीसे भरी हुई, मस्तीमें डूबी हुई।

तभी न उस दिन गीतासे यह पूछने पर कि ज़िन्दगी क्या है? उसने जवाब दिया था 'मस्ती और आनन्द।' और इतना कहते-कहते वह गोरा चुलबुला लड़का इतनी ज़ोरका ठहाका मार कर हँसी थी कि मेज़ पर रक्खा हुआ शराबका गिलास नीचे जा गिरा था। ज़ोरसे कुर्सीको पीछे धक्का देती हुई एक अँगड़ाई लेकर वह उठ खड़ी हुई थी और एक मस्ती भरी लापरवाहीके साथ इतना कह कर चली गयी थी कि 'मैं उन्हें बेवकूफ समझती हूँ जो तुम्हारी तरह मुँह बनाये गम्भीर होकर सोचा करते हैं कि ज़िन्दगी क्या है? ज़िन्दगी मस्ती है, मस्ती—एक गरम-गरम चायका प्याला। खुद पियो, दूसरोंको पिलाओ।' मैं अपना बाकी चाय ख़तम करते हुए उन ज़मीन पर बिखरे हुए काँचके टुकड़ोंको देख रहा था और अन्तरसे मना रहा था कि मैं तो बरबाद होगया, जानने मस्ती मान लेनेका पता नहीं क्यों इस दिलमें कोई उमंग ही नहीं उठती, शायद गीताके शब्दोंमें बेवकूफ होऊँ, पर यह लड़की, कुछ ऐसा कर कि, जीवन भर ज़िन्दगीके बारेमें यही सोचती रहे, खुश रहे एक खुशनसीब बुलबुलकी तरह ज़िन्दगीकी सामने डाल पर चहका करे। उसके हर स्वरमें प्रसन्नताके ऐसे ही इन्द्र धनुष लहराते रहें, उसकी हर अदामें ज़िन्दगीकी मिठास ऐसे ही थाँका करे, उसकी हर उड़ान गगनम पर मोया गुनगुनी-सी हो, वह ऐसी ही चंचल—मुजस्सिम शरारत बनी रहे, खुद हँसे दूसरोंको हँसाये।

गीताके पिता एक धनी आदमी थे। आरामके सभी साधन उसके पैरोंके नीचे पावड़े-से बिछे थे। इसमें क्या है, उसने

जाना ही न था, आँसू भी निकले थे तो खुशीसे भर हुए। वह एक ऐसी तितली थी जिसके चारों ओर फूलोंके भारसे लदा हुआ बसन्तकी जवानी झूल रही थी, पतझड़की कल्पना भी शायद उसके लिए दूभर थी। मुझे कभी-कभी लगता था जैसे जिन्दगीको मस्ती माननेके लिए वह मजबूर है।

एक वर्ष बाद उसकी शादी होगयी। लड़का पढ़ा लिखा, सुशील और अच्छी नौकरीपर था। उसकी खुशी इन कबूतरोंके धुले हुए परोंकी तरह और निखर आयी थी। उसके भाग्यपर लोग ईर्ष्या करते थे और वह सरलहृदया मस्तीकी गुलाबी पंखुरियोंके ढेरपर बैठा हुई खुशीकी धूपमें अपने सतरंगे पंख सुखा रही थी। मैं उन दिनों उसके पड़ोसमें रहा करता था। उसके यहाँ मैं बहुधा आया जाया करता था। एक दिनकी बात याद आती है—मैं जब उसके यहाँ पहुँचा तो उसकी माकी आँखें भरी भरी सी थीं। पूछने पर पता चला कि उनका कहना शीला बिल्कुल नहीं मानती। उनका कहना है अब वह बड़ी हुई, शादी होगयी, कुछ गम्भीर रहना सीखे, चञ्चलता छोड़ दे, शरारत न करे। इस तरह वह अपनी ज़िन्दगी कैसे चलावेगी? लेकिन वह जैसे सुनती ही नहीं, हर समय ऊधम मचाया करती है। मुझे लगा जैसे ज़िन्दगीके लिए गम्भीरता दुनिया ज़रूरी समझती है। कितनी नासमझ है दुनिया? यह चञ्चलता और शरारत भी बड़े भाग्यसे मिलती है, जितने दिन यह जीवनमें रह उतना ही अच्छा। उधर शीला और मस्त थी। उसकी आँखोंसे लगता जैसे वह कह रही हो—'ऊँह रहने दो दुनियाको—उसकी परवाह ही क्या करें हम।' उसकी शरारतोंकी

पाँखें खुली हुई थीं और उसकी किलकारियोंसे घर गूँज रहा था।

अब यह घटना यहीं स्वप्न-सा हो रही है। चाहूँ तो कुछ और सोच सकता हूँ पर पता नहीं क्यों जी नहीं करता। यों खुशीकी बातें कुछ ज्यादा याद भी नहीं रहतीं। फिर यह घटना हुए भी तो लगभग दस वर्ष हो गये। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि इस समय मुझे शीलाकी याद कैसे आ गयी? अच्छा होता उसकी याद इस समय न आती। यह साँझ, यह डूबा-डूबा-सा सूरज, यह हल्का-हल्का-सा अँधेरा, यह सूनापन, यह खामोशी और यह एक-एक करके कबूतरोंका उड़-उड़कर नदीके तटपर बने ऊँचे-ऊँचे मकानोंके मोखोंमें जा-जाकर बैठना यह क्या कम है मुझे उदासीसे भरनेके लिए? खैर, मैं भी इस एक कबूतरकी तरह, जो सबको यहीं बाँसपर छोड़ नदीके किनारेके इस ऊँचे मकानके उस मोखेमें दुबककर बैठ गया है, शीलाको अल्मोड़ेमें छोड़ चला आया था। पिताकी बदली हो गयी थी आगरे, और मैं उनके साथ फिर आगरेमें ही बस गया। अल्मोड़ा छूट सा गया, आगरेके ही निवासी-से माने जाने लगे हम लोग।

अल्मोड़ा छूटा, शीला छूटी। फिर जिन्दगीमें कौन एक दूसरेको याद करता है। आज-कलकी दुनियामें सब अपने-अपनेमें ही लगे हैं। सगे सम्बन्धी तक तो अगर दूर-दूर शहरोंमें पड़ गये तो एक दूसरेको याद नहीं करते, फिर पास पड़ोस और ऐसी मामूली जान पहिचानकी मुलाकात के कितनी होती है। इसमें पत्र-व्यवहारका होना तो एक बहुत बड़ी बात है। यही हुआ शीलाके साथ। इन

दस वर्षो तक उसके बारेमें कुछ पता नहीं लगा। और ज़रूरत भी नहीं थी पता लगानेकी। उसकी अपनी दुनिया थी, वह भी हर तरहसे भरी पुरी, फिर क्या करना था। एकदम भर इसलिए नहीं पाया कि उस जैसा शोख और मस्त लडका मैंने अभी तक दूसरा नहीं देखा।

इधर दो महीने पूर्व ऐसा हुआ कि मुझे मसूरी जाना पडा। यात्रा एक रईस मित्रका निमंत्रण था, फिर किसी पर्वतीय स्थानमें कुछ दिन रहनेका लालच मेरे लिए बहुत बडा चीज है। एक दिन ऐसा हुआ कि घूमकर हम लोग लौट रहे थे, थक बहुत ज्यादा गये थे, मित्रने कहा—'चलो पासमें ही एक रेस्तराँ है, वहां चाय पालें।'

मैंने कहा 'ना भाइ, घर ही चलो। फिर अगर चाय ही पीनी है तो अपने शानदार रेस्तराँमें पियेंगे।'

वह ऑख दबाकर बोला—'चलो भी वहाँ तितलियाँ सर्व करती है।'

उस समय मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। थक इतना गया था कि ज्यादा कुछ कहने या झगडनेकी भी हिम्मत नहीं रह गया था। मैं चला गया। रेस्तराँ बिल्कुल नया था और करीनेसे सजा था। मालिकने चलानेके लिए दो लडकियाँ रख ली थीं शायद उनमेंसे एक ऐंग्लो-इण्डियन भी थी। दोस्त साहब बोले— 'भई, मुझे तो एक पेग ह्विस्की ले लेने दो, मेरे लिए तो ज़िन्दगी नहीं है।"

मैंने कोई खाना-वाना नहीं का। कुछ सुस्त सा खामोश बैठा रहा। चाय लेकर वह ऐंग्लो-इण्डियन मिस आया। मेरे सामने ट्रे

रखते हुए वह मुसकराते हुए उनसे बोली जिसका अर्थ था—'ओफ ओ, बहुत दिनोंके बाद तशरीफ़ ला रहे हैं।'

दोस्त बोले, "क्या कहूँ इधर आनेका इत्तफाक भी नहीं हुआ, पर तुम्हारा ज़ायका हमेशा बहुत याद आता रहा।'

मैंने इसी बीच आँख उठाकर उसकी ओर देखा। मुझे यह इतना स्पष्ट लगा कि दुबारा मेरी आँख भी नहीं उठी और मैं चुपचाप चाय बनाने लगा। मेरे दोस्त पूछने लगे, यह नयानागी छोकरा क्यों है? उसे सिखाओ—यह बहुत शर्माता है। मेरा सामान उसके हाथ भेजना।"

और वह 'ओ गाड' कहती हुई चली गयी थी। थोड़ी देर बाद वह लड़की आयी। सफेद सलवार और सफेद ओढ़नी पहने। गम्भीर और सुन्दर पवित्रता अङ्ग-अङ्गसे टपकती थी। मेरे दोस्त एकटक उसकी ओर देखते रहे। कुछ मुसकराये, कुछ बोले, लेकिन वह चुपचाप उनका सामान रखकर चली गयी। उसके जानेके बाद शायद अपना क्रोध छिपानेके लिए वे मुझसे बोले—'बड़ा गम्भीर लड़का है, ज़रा-सा भी लिफ्ट नहीं देता। रेस्तराँमें ऐसा लड़कोंको रखना ही नहीं चाहिए। यहाँ तो मस्त पुरलुत्फ़ आदमी चाहिए। इतनी हमान और इतना सुनानगा। कुछ समझमें नहीं आता।"

मैं सोचता रहा, आदमी अगर अपनेसे हटकर दूसरेकी ओरसे सोचने लगे तो दुनियामें किसीको भी समझनेमें गलती न करे। पता नहीं उसकी जिन्दगीका यह कौन-सा परिच्छेद हो, उसके दिलपर क्या बीत रही हो, हम क्या जानें?

हम लोग काफी देर तक बैठे रहे। वह नहीं आया. तब तक वह

ऐंग्लो इण्डियन मिस कइ बार आयी और पूछता रहा, और मेर दोस्त से हँसी मज़ाक भी करता रही। मै चुपचाप चाय पीता रहा और सोचता रहा, यह इस मिसकी तरह मस्त क्या नहीं रह पाता ? वह इतनी गम्भीर क्यों है ? शायद उसे रेस्तराँका वातावरण पसन्द नही। अगर नहीं है तो वह किसलिए काम करनेको मजबूर है ? मेरे दिलम उसके लिए एक सहानुभूति घर कर गया। जितना ही मै सोचता था वह सहानुभूति उतना ही घना होती जा रहा था। और मनमें उसके हर रहस्य जान लेनेकी उत्कण्ठा उमड पड़ा। कभी-कभी उसका चेहरा आँखोंके आगे घूम जाता, लगता कुछ परिचित सा है पर यह विचार मनमें पहले ही मिट जाता।

उस दिन हम लोग चाय पीकर चले गये। रास्तेमें उसीके बारेमें बात चीत चलती रहा। दोस्तने बताया उसका नाम शाला है। वह अल्मोड़ाके किसी अच्छे परिवारकी लड़की है। मुझे अचानक उस शालाकी याद आयी। मेरा दिल बुरी तरह काँप उठा। नस-नस सिहर उठा पर मैंने अपनेको धैर्य बँधाया यह सोच कर कि अल्मोड़े भरम कोई एक ही शाला तो होगी नहीं। पर जाने क्या उस दिन दिल बचेन रहा, रातको ठीकसे सो भी न सका। बार बार उसका ख्याल आता रहा और उसका वह शोखी मस्ता इस शीलाकी उदासी और गम्भीरतासे टकराता रहा।

दूसरे दिन सुबह होते ही मै कोई बहाना निकाल अकेले ही रेस्तराँमें पहुँच गया और चुपचाप एक कोनेमें बैठ गया। वह चाय लेकर आया। मै सर झुकाये कुछ सोच रहा था। मेरे मुखसे यकायक निकल पड़ा, 'अगर कुछ तकलीफ न हो तो बता दीजिए !'

वह खड़ी चाय बनाती रही और मैं लिखता रहा। बीचमें इस ख्याल कि 'चीनी एक ही चम्मच डालियेगा' मेरी निगाह ऊपर उठ गयी और उसका चेहरा मेरी आँखोंमें उतर आया। उसके इस चेहरेमें भोलापन था और चुलबुलाहटवाला रूप नाच-नाचकर छूट जाता था। मैं उलझ गया था, वह परेशान था। मैं लिखता रहा यद्यपि लिखनेमें जी नहीं लगा। वह कबकी चली जा चुकी थी। मैं बहुत देर तक बैठा काम करता रहा। वह दुबारा चाय लाया और बनाने लगी। मैं पूछ ही बैठा—

"तुम्हारा नाम शीला है?" वह कुछ बोली नहीं। चुपचाप चाय प्यालेमें डालती रही। मैंने फिर पूछा—

"तुम अल्मोड़ेके बैनर्जी मास्टरकी लड़की हो न?' वह चुप रही, लेकिन मैंने देखा जैसे उसका चेहरा फक पड़ गया है। जल्दीसे वह डर रही है और भागना चाहती है। मेरे मुँहसे उसकी बेचैनी देख सहसा निकल पड़ा—

"तुम मुझे पहचान नहीं रही हो, मैं प्रकाश हूँ—तुम्हारे पड़ोस वाला बेवकूफ प्रकाश!" वह बिना चाय डाले ही तेजीसे चली गया। मैं सहम उठा, मुझे लगा जैसे मैंने उसके दिलको चोट पहुँचायी है? मेरा सारा शरीर झनझनाने लगा। दिमाग चक्कर खाने लगा। आँखें सामने छलछला आयीं। चायके प्यालेसे उठती हुई गरम-गरम भाप मुझे उसकी पलकोंकी गाथा और चुलबुलाहट नाचती हुई दिखाई दी और मेरे दिमागमें तेजीसे वे शब्द निकलकर तैरने लगे। 'दिलका मन्दी है भय्या—एक गरम-गरम चायका प्याला खुद पिया दूसरेको पिलाया' और मैं सोचने लगा वह

सब जिसका आज सच होगया । फिर वह उस दिन मेरे सामने नहीं आयी । मैं दो तीन दिन तक लगातार गया लेकिन वह मेरी निगाहसे भी बचनेकी कोशिश करती रही । इधर मेरी छुट्टियाँ खत्म हो रही थीं । मैं केवल एक बार उससे मिलकर माफी माँग लेना चाहता था । उससे पूछना चाहता था, आखिर यह सब क्या हुआ ? यह सारा परिवर्तन उसमें, उसकी दुनियामें, उसके स्वभावमें, मेरी समझमें कुछ नहीं आता था । चौथे दिन मैं उदास सा एक कोनेमें बैठा था । वह पहले इण्डियन मिस शायद छुट्टी पर था । वह चाय लेकर आया था । उसे देखकर मेरी आँखें छलछला आयी ।

मैंने कहा—"शालू यह सब क्या हुआ ?"

वह कुछ नहीं बोली । चाय बनाता रहा और उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरते रहे । मैं कुछ पूछ नहीं सका । वह सिर नीचा किये ही बोला—

"तुम कलसे यहाँ मत आया करो ।" और चला गया । मुझे लगा जैसे इतना कहनेमें ही उसे कितना कष्ट हुआ हो, उसे दर्दके कितने घने बादल चीरने पड़े हों ।

उसके दिनमें फिर मैं वहाँ न जा सका । इच्छा न रहते हुए भी छुट्टी खत्म होनेके कारण यहाँ चला आना पड़ा । फिर अपनी उलझनें ही इतने जटिल रूपमें सामने आयीं कि उतना याद न रख सका ।

आनेके बाद आजसे दो मास पूर्व दोस्तका खत आया । लिखा था, शालूने उससे मेरे बारेमें पूछा था और रो रहा था,

कह रही थी वह अब इस रेस्तराँमें काम नहीं करेगा। मालिक ज्यादती करता है। उसे उसका अपमान करनेका क्या हक है? वह स्त्रीकी आँगार है, अपना अपमान नहीं सह सकती है। उसे भी मारेगी और खुद भी मर जायगी।

मैंने सोचा, अच्छा ही है वह यह काम छोड़ दे। थोड़ा-सा पढ़ी भी है, किसी तरह कुछ और पढ़ कर स्कूल आदिमें लग जाये। हमारे समाजका वातावरण अभी ऐसा नहीं बन पाया है कि कोई शरीफ लड़की रेस्तराँमें काम करे। स्कूल, अस्पताल आदिकी नौकरी फिर भी कुछ खप जाती है यद्यपि उनमें काम करने वालियोंको भी लोग बुरा कहनेसे बाज नहीं आते। फिर भी रेस्तराँकी नौकरीसे खुदा बचाये।

लेकिन पन्द्रह दिन बाद दोस्तका फिर खत आया था। लिखा था, शायद अब छोड़ दे, अभी तक तो उसने किसी तरह सह लिया। इसके बाद जो खत आया उसमें लिखा था—'वह खुश तो नहीं है लेकिन लगता है जैसे वह छोड़नेमें मजबूर है।'

और आज खत आया था—'अब वह कुछ खुश रहता है। उसका कहना है कि किसी तरह जिन्दगी काटना है। वह काम नहीं छोड़ेगी, जैसे चलता आ रहा है चलता आ रहा है।'

इस समय घना अन्धकार छा गया है। कुछ स्पष्ट नहीं। केवल रह-रह कर चमक उठती है। यह अवस्था मेरे मस्तिष्ककी है। कुछ समझमें नहीं आता दुनिया क्या है? हम क्या हैं? जिन्दगी क्या है? सूरज डूब गया है। चारों ओरसे अँधेरा बढ़ता हुआ मेरे करीब आ रहा है। सारे कबूतर इधर-उधर कर अपने-अपने घोंसलोंमें

आकर बैठ गये हैं और इस बाँस पर अकेला एक कबूतर बैठा है। मुझे लगता है यह वही कबूतर है जिसका एक पंख टूट गया है—यह उड़ने में मजबूर है। अभी एक घण्टे पूर्व किसी शरारती लड़केने जो नदीम बना रहा था, नीचे ही नाचे आकर उसे पकड़ लिया था। उसका एक ही पंख उसके हाथमें आया और वह फड़फड़ा कर निकल भागा पर उसका पंख जैसे बेकाम हो गया। लड़का डरके मारे उसे वैसा ही छोड़ भाग आया था। मैं तबसे देख रहा हूँ वह चुपचाप बैठा है। उसकी मस्ती, उसका खेल सब बन्द। वह अकेला है, तनहा अकेला—कोई भी उसके पास नहीं। पंख वालोंके साथ सभी उड़ान भर लेते हैं लेकिन जिसके पंख टूट जाते हैं उसका कोई साथ नहीं देता। वह अपने सारे साथियोंको मस्तीसे डुबकियाँ लगाते हुए देखता रहा है और अब सबके चले आने पर अपनी मजबूरी पर आँसू भर रहा है। वह बार बार पर फड़फड़ाता है और उड़ कर उनके मकानके मोरेमें आ बैठना चाहता है। वह कोशिश कई बार कर चुका है, बालिश्त आध बालिश्त उठ भी चुका है पर जी मसोस कर रह गया है। शारदा भी है इस कबूतर-सी। उसके भी पर किसी अदृश्य शक्तिने तोड़ दिये हैं। वह भी चुपचाप जहाँ बैठ गया है बैठ गयी है। तभी तो वह कहता है—'किसी तरह ज़िन्दगी काटना है जैसे चलता जा रहा है चलता जा रहा है।' आजको वह है, हो सकता है कलको वह निराधार हो जाय। इस छोटेसे आधारका ही क्या भरोसा? जब माता पिता पति सब छोड़ कर चल गये और आज उसका कोई नहीं। अकेली है अकेली। इतना धन

होनेपर भी आज वह एक पार्टीको मोहताज है। और ऐसा असहाया-वस्थामें उसकी मस्ती और उसकी मुसकान भी उसका साथ छोड़कर चली गयी। मेरा दिल भर उठा है, आँखें छलछला आयी हैं। अभी वह कबूतर दो-तीन फुट तक उड़ आया था। मैं खुश था कि किनारे तक आ जायगा पर वह लहरोंमें ही गिर पड़ा और अब निराधार बहता चला जा रहा है। नीला बह रही है, मैं बह रहा हूँ, हम सब बह रहे हैं। उफ जीवन भी क्या है? एक मजबूरी, घेर घेर कर मजबूरी, यहाँ हम हंसते हैं मजबूरीके ही कारण, रोते हैं मजबूरीके ही कारण। मजबूरी केवल मजबूरी, घेर घेर कर मजबूरी। और कुछ नहीं है जिन्दगी क्या?

बेबसी

संसारमें अपना पराया कोई नहीं, जो अपना समझे वह अपना है और जो पराया समझे, वह अपना होनेपर भी पराया है। इसी आधारपर मैं दुनियामें किसीको अपना मान पाता हूँ। इसलिए समाज-द्वारा निर्मित रिश्तोंकी दीवारें मुझे बाँध नहीं पातीं यदि वे केवल नामकी हैं, यदि उनमें कोई गर्मी नहीं, स्नेह नहीं।

मेरी एक साली है, नाम है मधु। यों साली और जीजाका रिश्ता एक मज़ाकका रिश्ता होता है, उनका स्नेह भी एक मज़ाक का आवरण लिये होता है, कहीं कोई गम्भीरता इस रिश्तेका नाम लेते समय हमारे सामने नहीं आती। लेकिन मेरे गम्भीर स्वभावने शायद मज़ाकको पनपने नहीं दिया, मज़ाककी खींच-तानके कारण इस सम्बन्धमें कभी ज्वार भाटा नहीं आया, कभी चढ़ाव उतार नहीं दिखाई दिया। वह किसी छोटे जलाशयकी तरह स्नेह की चाँदनीमें चुपचाप एक सा बना रहा। शादीके पहलेकी एक बात याद आती है जब लड़केवालोंकी ओरसे सगाईकी रस्म होती है, उसी समय मेरी इनसे मुलाकात हुई थी और तभी मुझे एक नये अपरिचित व्यक्तिके स्नेहमें यकायक बंध जाना पड़ा था।

सुबहका समय था। दालानके खम्भोंपर फैली हुई देशी अंगूर की लताओंसे छनकर रेशमी धूप आ रही थी। रात भर ट्रेनमें जागने के कारण मैं काफी थका सा बैठा था। नहा धो लेनेपर भी नींदकी

खुमारी नहीं गयी थी। तभी वह एक गुलाबी साड़ीमें लिपटी हुई आयी और मेरे पास नमस्ते करके बैठ गयी। नींद आते समय हम किसी प्यारे सपनेका स्वागत जैसे बिना हिले-डुले करते हैं, वैसे ही मैंने उसका स्वागत किया। एक तो नींदमें भरे होनेके कारण, दूसरे वह सारा वातावरण एक मकड़ीके जालकी तरह लगनेके कारण, जो मुझे हर क्षण लपेटता जा रहा हो, मैं बिना हिले डुले उस आरामकुर्सीपर कुछ सोचता-सा आँखें बन्द किये बैठा रहा। वह कितनी देर बैठी रही यह मुझे याद नहीं। मुझे खामोश देखकर उन्हें स्वयं ही बोलना पड़ा।

"नींद भरी है आपकी आँखों में। आप भीतर जाकर सो जाइए नहीं तो तबीयत खराब हो जावेगी। जब नाश्ता वगैरह हो जायगा तब मैं जगा दूँगी।"

किसी नये व्यक्तिसे मुझसे इतनी आत्मीयता भरे वाक्य सुनने को कम मिलते हैं। इस पहले वाक्यने ही हृदयके पासके किसी अनजान तारको झनझना दिया। मैं सोना चाहता तो जरूर था पर उस समय बड़ा भद्दा लग रहा था। मैंने यों ही लापरवाहीसे कहा, "ऊँह, जाने दीजिए, फिर देखा जायगा।" लेकिन मेरे बार बार मना करने पर भी वह मानीं नहीं और मुझे भीतर कमरेमें जाकर सो ही जाना पड़ा। यह जिद मुझे अच्छी लगी। कभी कभी हम भीतरसे चाहते तो कुछ हैं और बाहरसे कहते कुछ हैं। उस समय भीतरी इच्छाके अनुकूलकी गयी जिद हमें सचमुच अच्छी लगती है और वास्तवमें भीतर और बाहरका यह अन्तर बहुत व्यवहार-कुशल व्यक्ति ही समझ पाते हैं। जब तक मैं सोता रहा

वह वाहर दालानमे बैठी इस बातकी निगरानी करती रही कि कहीं कोई आकर मुझे जगा न दे। कहीं कोई शोर न हो कि मेरी नींद टूट जाय। लगभग दो घण्टे वाद किसी स्पर्शसे मेरी आँख खुल गयी। मैंने देखा कि वह पास ही मेज़ पर नाश्ता लगाये खड़ी है और मुसकराते हुए कह रही है —

"अभी नींद पूरी नहीं हुई—नाश्ता कर लीजिए तब फिर सो जाइयेगा। आपसे मिलने बहुतसे लोग आये थे, मैंने सबको मना कर दिया।" उस सारे वातावरणमे मुझे यही एक ऐसा प्राणी दीख पड़ा जिसे बिना किसी बनावटके मेरे आरामकी चिन्ता हो। मैं नाश्ता करता रहा और मेरे महज़ एक ही बारके कहने पर वह भी मेरे साथ खाने लगा। जैसे वह जानती हो कि मुझसे अकेले खाया नहीं जायगा और दो बार कहनेकी मेरी आदत न हो।

मैं मिर्च बिल्कुल नहीं खाता, उसने इस थोड़ी ही देरमें जान लिया। समोसेकी प्लेटमे हाथ लगाते ही वह बोली, "इन दो को मत खाइयेगा", और उसने उन्हें अलग कर दिया। बादमें मालूम हुआ उनमें केवल मनाककें लिए मिर्च ही मिर्च भरी है। पता नहीं क्या मैंने उनमेंसे एक झपटकर उठा लिया और उसे यह कहते हुए मुँहसे लगा लिया, "जब आपने मेरे लिए खासतौरसे बनाया है तब मैं ज़रूर खाऊँगा।" लेकिन इसके पहले कि मैं उसे मुखमें रख सकूँ उसने मुँहसे छीन लिया और प्लेट दूर रखती हुई बोली, "मिर्चें बहुत तेज़ है। आपको तकलीफ होगा।"

मैं सोचने लगा, अपने मनाकके आनन्दसे इसे मेरी तकलीफका

ज्यादा ख्याल है। जहाँ स्नेह होता है वहाँ व्यक्ति मज़ाक भी ऐसा ही करना चाहता है जिसमे दूसरेको आराम पहुँचे तकलीफ नहीं।

मैंने कहा, "लेकिन मज़ाक तो खत्म हो गया। आपकी सारी मेहनत भी बेकार गयी।"

मेरे इस कथनसे उसका चेहरा शर्मसे लाल हो गया। और वह अपनी झेंप मिटाती हुई बोली, "तो क्या हुआ?"

मैं चुप रहा। कुछ देर बाद बोला

"आप बहुत अच्छी है। आपका नाम क्या है?"

वह बोली, "मधु।"

मैंने पूछा, "आपको गाना आता है?"

उसने कहा, "हाँ, थोडा-बहुत।"

मै बोला, "सुनाइयेगा?"

उसने कोइ आनाकानी नहीं की। चुपचाप हारमोनियम ले आया और गाने लगी। एक गाना गाकर वह बोली, "नीचे बहुत काम करना है। मैं अब जाती हूँ। आप बुरा न मानें तो आपको फिर सुना दूँगी। आप तब तक ग्रामोफोन बजाइये।" और वह रेकार्ड लगा कर चली गयी। मैं सोचने लगा, इस समय मेरा कहना वह बडी आसानीसे टाल सकती थी। लोग ऐसे अवसरों पर चूकते नहीं।

उस चन्द क्षणोंमे अपने स्नेहमय व्यवहारके कारण ही उसने मुझे अपना बना लिया। मेरे ऐसे भावुक आत्मा स्नेहके हाथों बड़ा जल्दी बिक जाते है। उस दिन दोपहरको मैं काम

जल्दी जल्दी खतम करनेके बाद वह मेरे पास ही बैठी रही। कहती रही —

"आपको देखकर ऐसा लगता है जैसे कि मैं आपको बरसोंसे जानती होऊं।" और फिर अपने मन का अपनी ज़िन्दगीकी बहुत सी बातें कहीं। उसके सामीप्यने समयका लम्बाईका अनुभव ही नहा होने दिया। रातको भूख नहीं थी। मैंने उसे मना किया कि मैं खाऊँगा नहा पर वह मानी नहा। जिसने मेरा थोडा भी ख्याल किया हो उसकी कोइ भी बात टाल देना, मेरे बूतेकी बात नहीं। वह खाना ले आया।

मैंने कहा—"खा लूँगा तुम्हारा कहना मान कर, पर एक भी पूडी रखने की पेटमें जगह नहा है।" मैं खाने लगा और आखिरकार उसने ही अपना हाथ रोक लिया और बोली, "अब आप मत खाइये।"

मैंने कहा, "तुम समझी लेकिन देरम—बेशर खिला दिया तुमने! कहीं तबीयत खराब हो गयी तो?"

वह दृढतापूर्वक बोली—"नहीं होगी।" और उसने एक छोटे शीशेके गिलासमें शराबके रंगवाली कोइ लाल दवा दी और मैं मुसकराते हुए पीकर सो गया। उसके उस समयके विश्वास भरे अटल स्नेहके प्रतीकके रूपमें वह शीशेका गिलास और वह लाल दवा बहुत दिनों तक मेरी आँखोंके सामने नाचते रहे।

चलते समय वह बहुत रोती रही। घर भर उसका मज़ाक बनाते रहे। मेरा भी जी भरा भरा सा था। मैं नहा जानता था कि एक दिनके ही अन्दर स्नेहका बन्धन इतना मजबूत भी

हो सकता है। फिर दो मास बाद उसकी शादी हो गयी। मेरा जाना उसकी शादीके एक महीने बाद हुई।

यह उससे दूसरी मुलाकातका अवसर था। इस बार भी वह मुझे वैसी ही लगी। उसकी सूनी माँगमें सिन्दूरकी एक मोटी रेखा को छोड़कर उसमें और कोई परिवर्तन जैसे मुझे नहीं दिखाई दिया। किन्हीं अप्रत्याशित घटनाओंके कारण बारात विलम्बसे पहुँची। सबकी शिकायतोंके पहाड़ खड़े हो गये। सबने स्वागत किया लेकिन एक खिन्न मनसे। मेरा हृदय उस सारे ढोंग और बनावटसे हटकर कोई एक ऐसा आधार चाहता था जहाँ सच्ची सहानुभूति हो, सच्चा स्नेह हो। वह मिला भाँवरोंके बाद उसकी आँखोंमें। उसने पूर्ववत् मुसकराकर मेरा स्वागत किया और बिना शिकायतका एक वाक्य कहे हुए ही मुझे पसीनेसे तर देखकर उसने पंखा झलना शुरू किया और बोली, "आजकलका सफर बड़ा तकलीफदेह होता है। रास्तेमें कोई तकलीफ तो नहीं हुई आप लोगोंको?"

मैंने भरे हुए दिलसे कहा, "आपको भी कोई शिकायत करनी है क्या?"

वह बोली, "शिकायत कैसी? एक तो लगनके दिन, इतनी बारातें चलती हैं। फिर दो-दो तीन-तीन जगह गाड़ी बदलनी होती है। गाड़ीका छूट जाना भी कोई असम्भव तो नहीं।"

मैंने कहा, "तुम ऐसा सोचती होगी, लोग तो नहीं सोचते।"

वह चुप रही। मैं भीतर औरतोंमें बैठा था। घरमें तमाम औरतें थीं, सबोंने मीठे-खट्टे उलाहने दिये ही—पर वह जैसे लगता था अपने

स्नेहमय व्यवहारके कोमल स्पर्शमे इन उलाहनोंका चोटको सहती रही हो। नर नारीमे भरे हुए उस मकानमे मेरे निराधार मनको ऐसा लगता जैसे वही मेरी अपनी हो, और सब पराये। तभी तो छोटेमे लेकर बड़े तकका कहना टाल देनेपर भी उसका कहना मानकर मुझे खाना पड़ा और यह बात दूसरोंके दिलपर चोट भी कर गयी। फिर तो घर भरकी इच्छा उसीके माध्यमसे मुझ तक पहुँची। मैने भी कोई आपत्ति नहीं की। इस बार हम लोग और करीब आ गये। कहाँ कोई दूरी, कहीं कोई दुराव बीचमें रह ही नहीं गया। आडम्बरहीन, प्रदर्शनहीन सम्बन्ध। ऐसा सम्बन्ध, जहाँ अपने मनकी हर बात कही जा सके, जहाँ एक दूसरेका हर क्षण ख्याल रक्खा जाय, जहाँ स्वयं तकलीफ उठा लेनेपर भी दूसरे को आराम देनेकी इच्छा उमड़ पड़े। वह हर क्षण मेरे पास रही और समयका बोझ फूल सा हल्का हो गया। और इस बार चलते समय हम दोनोको दुगुना तकलीफ हुई।

तीसरी मुलाकात गौनेके अवसर पर हुई, लगभग एक वर्ष बाद, और तीसरी मुलाकात ही ऐसी थी कि मुझे कुछ लिखना पड़ा।

इस बार उसके पति महोदय भी आये थे। उसके बहुत-से पत्र आये थे जिनमें लिखा रहता था कि 'वे' मुझसे मिलनेके लिए बहुत उत्सुक हैं। वे बार-बार मुझसे मिलनेके लिए पूरी तैयारी कर लेते हैं पर किन्हीं खास अड़चनोंके कारण मजबूर रह जाते हैं पर अबकी इस अवसरपर उनसे जरूर मुलाकात होगी। मैं भी थोड़ा बहुत उत्सुक था, यद्यपि नये नये आदमियोंसे मिलनेकी उत्सुकता मेरे दिलमें कभी नहीं उठती। खैर! वे पश्चिमी साँचेमें ढले हुए

व्यक्ति थे। पूरे अप टू-डेट। घरपर भी सूट पहननेवाले। हर क्षण अँगरेजी ही बोलते थे। सिगरेट इतनी पीते थे कि उसका तारतम्य ही नहीं टूटने पाता था। मुझसे उनका परिचय हुआ। वे बहुत देरतक कश्मीर-समस्या पर बात करते रहे और मैं चुप चाप सुनता रहा।

थोडी देर बाद जब वे नीचे चले गये तब मधुसे मेरी मुलाक़ात हुई। वह आयी कुछ उदास सी। मैने पूछा—"तुम अबतक कहाँ थीं मधु? मेरी आँखें तुम्हें खोजते खोजते थक गयी।"

वह बोली—"नीचे उनके कपडे वगैरह ठीक कर रही थी।"

मैं सोचने लगा, कितना अजीब है यह कि मैं एक घण्टेसे आकर बैठा हूँ और वह नीचे कपडे ठीक करनेमें लगी थी जब कि उसके खतोसे लगता था कि उसे एक एक क्षणकी देर असह्य है, मुझे वह फौरन देखना चाहती है।

मुझे मालूम हुआ कि वे दिनमें दस बार कपडे बदलते थे और उसे हर बार उनका ठीकसे तह करनी पडती थी।

मैंने कहा—"चलो अच्छी ड्यूटी है।"

वह कुछ मुसकरा दी।

वह दो मिनट बैठा भी न थी कि हडबडा कर यह कहते हुए उठ गयी, "चलूँ उनके नहानेका इन्तज़ाम करना है।" मुझे उसका इस तरह फौरन चला जाना कुछ अच्छा नहीं लगा। फिर वह दो तीन घण्टे तक उन्हें नहलाती धुलाती और सजाती-सँवारती रही और फिर वह ऊपर मेरे कमरेमें एक नया सूट पहने, मुँहमें सिगरेट

दबाये और हाथमें एक पूरा 'श्री रामरम' का डिब्बा लिये हुए आ पहुँचे और बोले—अँगरेजीमें !

"आपको यह जगह कैसी लगी ?"

मैंने कहा—"मुझे तो वह हर जगह अच्छी लगती है जहाँ कोई अपना हो।"

उन्होंने कहा—"यहाँ बिजली नहीं, पानी नहीं, दिलचस्पीके लिए सिनेमा वगैरह भी नहीं। मैं तो यहाँ एक दिन भी नहीं रह सकता। बड़ी परेशानी है। सोचता हूँ, बिना फैनके दोपहरमें सोऊँगा कैसे ?"

मैं कहता ही क्या ? यही सोचता रहा कि उनकी भी मजबूरी है, आदत पड़ गयी है क्या करें ?

भोजनके समय उन्होंने मधुको ड्यूटी दी कि वह बराबर उन पर पंखा झले, नहीं तो वह खा न सकेंगे। वह बेचारी पंखा झलती रही लेकिन जैसे कुछ बेमनसे और मैं सोचता रहा उसे भी मेरे साथ खाना चाहिए था। भोजनके उपरान्त वह फिर उनमें लग गई। शायद वे नीचे सोते रहे और वह बैठी पंखा झलती रही। मैं भी ऊपरके कमरेमें पड़ा सोचता रहा—"अच्छा ही है, पत्नी होती ही है इसीलिए कि पतिको आराम दे। फिर इतना स्नेह करनेवाली पत्नी मिलती ही कहाँ है ?"

लगभग तीन बजेके मेरी आँख लग गई थी कि ये लोग ऊपर बगलके कमरेमें आ डटे और ज़ोर-ज़ोरसे गप्प मारते और खिलखिलाते रहे। मेरी नींद जो आ भी रही थी, भाग गयी। रात भर गाड़ीमें था भी नहीं सोया था, सिरमें दर्द होने लगा। पर उन

लोगोंका शोर कम न हुआ। उनके पतिके कहकहे दीवारों तकको कँपा देते थे। मैंने कई बार सुना कि वह कह रही है —

"ज़रा धीरे धीरे उस कमरेमें वह सो रहे हैं।" पर जैसे उन्हें इसकी परवाह ही न हो। उनके कहकहे और उनकी खिलखिलाहट आती ही रही। मधु भी बीच-बीचमें जोरसे हँस पड़ती थी और मैं सोचता था उस दिनकी बात जिस दिन वह मुझे सोता देख किसीको भी आने तक न देती थी। आधे घण्टे तक लगातार करवटें बदलनेपर भी मैं सो न सका। सोचने लगा पड़ा-पड़ा क्या करूँगा, स्टेशन चला चलूँ, कुछ सामान बुक कराना है, उसका इन्तज़ाम कर दूँ। मैं उठ खड़ा हुआ। कुरता डाल चल पड़ा। उन्होंने जाते देख पूछा—"कहाँ भाई साहब?"

मैंने कहा—"स्टेशन, चलते हैं आप भी? एक घण्टेमें आ जायँगे।"

वे बोले—"ओ गाड, इतनी धूपमें मैं नहीं जा सकूँगा।"

मैंने मधुकी ओर देखा, उसका दृष्टिमें बड़ी बेबसी दिखाई दी। जैसे यह जो कुछ हुआ सब उसकी अनिच्छासे और वह समझ रही हो कि मैं सो पानेमें असमर्थ होनेके कारण ही जा रहा हूँ। उसके ओठ काँपे। कुछ उसने कहना चाहा, पर रह गयी।

मैं चला गया। डेढ़ घण्टे बाद वापस आया। सिरमें बड़ी जोरका दर्द हो रहा था। वह किसी तरह मेरे पास आयी। मुझे देखते ही बोली—

"सिरमें दर्द हो रहा है क्या?"

मैंने हाँ सूचक गर्दन हिला दी।

वह बोली—"मैं अभी तेल लेकर आता हूँ।"

मैं ऊपर बड़ी देर तक बैठा प्रतीक्षा करता रहा। आधे घण्टे बाद वह आयी, कपड़े बदले हुए कहीं जानेकी तैयारीमें। उसे देखते ही मेरे मुखसे निकल पड़ा—

"मैंने समझा था तुम तेल ला रही हो।"

उसकी आँखें नीची हो गयीं। मुसकान उदासीमें बदल गयी। लाचारीके चिह्न उसके मुखपर अंकित हो गये और मैं उसके उदास चेहरेको देखकर सोचता रहा—"जीवनमें सफलता चाहते हो तो अभिनय करना सीखो। अभी यहाँ नाचते किलकारियाँ मार रही थी और अब। कैसा अच्छा अभिनय है ?"

वह डूबती सी आवाज़में बोली।

"एक बात कहूँ ?"

मैंने कहा—"कहो न।"

वह बोली—"आपकी तबीयत नहीं लग रही है—चलिए आपको नदीकी तरफ घुमा लायें। वो भी चल रहे हैं।"

मैंने कहा—"तुम लोग हो आओ, मैं नहीं जाऊँगा।"

मेरे इस उत्तरसे मैंने देखा वह बहुत उदास हो गयी है। अतः मैं कपड़े पहनने लगा और सोचने लगा बेचारी फँस गई होगी किसी काममें, नहीं आ सकी। मन कहता था यह बिलकुल गलत है। नाचने जाकर वह पतिके आगे सब कुछ भूल गयी। उसे मेरी चिन्ता ही क्या हो ? पर उसकी वेदना भरी आँखें बार बार खिंच जाती थीं और मुझे इस निष्कर्ष पर पहुँचने नहीं देती थीं। मैं तैयार हुआ ही था कि किसीने बाहर आवाज़ दी। मैं नीचे चला

गया। मुझसे कहता गया कि एक साहब आ गये हैं, मैं उन्हें पाँच मिनटमें विदा करके आया। इत्तफाकसे उनको विदा करते-करते दस मिनट हो गये। मैं तेजीसे घरकी ओर बढ़ा। घरपर पता चला, पति और पत्नी पाँच मिनट तक इन्तजार करके चल गये।

मैंने सोचा, हाँ देर तो हो ही गया, चलो रास्तेमें पकड़ लेंगे। पर न जाने क्यों दिमागमें एक बात गूँज जाती थी। स्नेहका आधिक्य समयकी पाबन्दी जैसी शृंखला हमेशा तोड़ देता है, फिर पाँच मिनटकी जगहपर पचीस मिनट भी इन्तजारी की जाती है।

मेरे साथ वहाँके रिश्तेके कोई भाई थे, वे भी हो लिये। हम लोगोंने तेजीसे अपने कदम बढ़ाये ताकि उन्हें पकड़ लें, पर बहुत दूर तक उनका पता न चला। सूरज डूब गया था। साँझका धुँधलका चारों ओर फैल गया था। उस कच्चे निर्जन रास्तेपर, जो दोनों ओर घने पेड़ोंसे ढका था, काफी अँधेरा छा गया था। हम लोग बातें कम करते थे और केवल यह सोचते हुए कि इतनी जल्दी कितनी दूर निकल गये, तेजीसे चले जा रहे थे।

भाई बोले—"अँधेरेके कारण दूर तक तो दिखाई नहीं देता। टार्च होता तो देखते, शायद आगे जा रहे हों।"

मैंने पूछा—"कोई दूसरा रास्ता तो नहीं?"

उन्होंने कहा—"है तो, लेकिन बहुत गन्दा। उधरसे शायद नहीं गये होंगे।"

तभी दो काली आकृतियाँ सामने जाती हुई दिखाई दीं। हम लोगोंने सोचा, हो सकता है कोई दूसरे लोग हों, अतः पास जाकर निश्चित कर लेनेपर ही टोकना उचित होगा।

पास जानेपर बिल्कुल साफ मालूम हो गया कि वही है।

उन्होंने कहा—"बुलायें ?"

मैंने कहा—"शायद कोई प्राइवेट बात कर रहे हों। हम लोग रुकावट क्यों बनें ? वे जरूरत समझेंगे तो खुद साथ हो लेंगे।" हम लोग भी बात करते हुए बगलसे निकल गये। मधुने मुझे देखा भी, पर वह बोली नहीं। मैंने सोचा, पति पत्नी हैं, बहुत-सी बातें रहती हैं, कोई मामला चल रहा है, हस्तक्षेप करना उचित नहीं। नदीके तीर तक शायद उन लोगोंकी बातें खतम हो जायँ, फिर वहाँ हम लोग साथ हो लेंगे। हम लोग जल्दीसे कदम बढ़ाकर ढालपर जाकर बैठ गये पर वे लोग दिखाई ही न दिये। उस समय पूणमासीका चाँद आकाश पर निकल आया था। दूध सी चाँदनी चारों ओर फैल गयी थी। नदीके किनारे बड़ी ऊबड़-खाबड़ जमीन थी जिसमें खरबूजे और तरबूजके खेत थे। ऊँचे-ऊँचे टीलों पर मूँज और सरपतके सूखे झाड़ सोये हुए थे। हवा धीरे धीरे बह रही थी। गर्मीके कारण नदी सिमट कर एक नाले सी हो गयी थी। उसका पाट बड़ा चौड़ा था। लगता था बरसातमें काफी बढ़ जाती होगी। नदीकी ढालपर उतरते ही एक शिवाला था, पास ही एक कुआँ जिसकी जगत सफेद थी। ढाल बहुत ज्यादा था, नीचे बहुत दूर गहराईमें नदी बहती थी। वे लोग ऊपर कुएँकी जगतपर ही बैठ गये। हम लोग एक बार फिर बगलसे ही निकल गये। उन लोगोंने देखा भी, पर जैसे हम लोग कोई अजनबी हों, उन्हें हमसे कोई मतलब ही न हो। ढालमें उतरकर हम लोग नदीके तीरपर पानीके

पास एक टूटे पत्थरपर बैठ गये। पानीमें लम्बी-लम्बी घास हिल रही थी, जिसपर चाँदनी किरण झिलमिल-झिलमिलकर अन्धकारसे लुका-छिपा खेल रही थी। दूर नदीका ऊँचा कगारा स्तब्ध खड़ा था। चाँदके एक कोणमें होनेके कारण उसकी काली परछाईं उस ठंडी बालूपर सिमटी हुई बड़ी भारी मालूम पड़ रही थी। हवाकी लहरोंने सरपतकी ऊँची-ऊँची निखरी हुई प्रतिमाएँ ऊबड़-खाबड़ ज़मीनकी मुँडेरपर खिल उठती थीं और उनके बीचमें छिपे हुए छोटे-छोटे खरबूजोंके खेत आँखोंमें धूल उड़ाते थे। आकाशके तारोंकी तरह नदीकी उस धारमें कुछ इधर-उधर सफेद फूल खिल रहे थे। कोई चिड़िया तेजीसे बार-बार नदीकी लहरोंको छूती हुई चक्कर काट जाती थी, उस खामोश चाँदनीमें, सोये हुए वातावरणमें एक गूँजती आवाज भर होती थी और फिर निगाहोंकी पकड़से बाहर हो जाती थी।

कितना मस्त लग रहा था यह सारेका सारा वातावरण, और मैं सोच रहा था यह कुदरत मनोरम स्वप्नलोक कल दोपहरको कितनी भयानक हो जायेगी। बादलका आवरण खिसकते ही जगह आग बरसेगी, रेतसे लगते हुए सरपतके पीले-पीले ढेर लपटसे धधक उठेंगे। यह ठण्डी बालू पागल होकर, अपना सिर बाल खोल, ज़मीनसे आसमान तक इस चाँदको धूल देनेका खब्त लिये उड़ती फिरेगी, उस मासूम कगारेके ऊपर सूखकर पर नाचेंगे, यह ठण्डा जल खौलने लगेगा। यह पानीकी घास जो इस समय सादा हरी ओढ़ना ओढ़ खड़ा है, झुलस कर पानीमें गिर पड़ेगा। यह सारी निस्तब्धता मौनमें बदल जायगा। यह मनोरम स्वप्नलोक,

मे सोचता हूँ, क्या सचमुच वह परवश थी ? अगर था भी तो क्या यह उचित था ? पतिके आगे क्या नारीको अपना व्यक्तित्व मसल देना चाहिए, अपनी आवाज घोट देनी चाहिए ? मे क्या जवाब दूँ ? और अगर कोई जवाब देता हूँ तो दुनिया उसे मानेगी ही क्यों ?



प्रेम-विवाह

छोटे-छोटे काले घुँघुआरे बालोंको हटाकर चाँद इस समय आकाशकी नीली धारोंमें तेजीसे भाग रहा है। नीचे रातमें भीगे हुए पेड़-पल्लव अन्धकारके धुँधले आवरणमें खामोश खोये-खोये सिर झुकाये, मेरी आँखोंके सामनेसे तेजीसे गुजरते जा रहे हैं। डब्बेमें पूर्णतया खामोशी है। सब उल्टे-सीधे पड़े ऊँघ रहे हैं। स्थानाभावके कारण मैं नीचे ट्रंक पर ही बैठ गया हूँ और मेरे सामनेकी बर्थ पर अपने नन्हे सुन्दर बच्चेको लिये रूप सो रही है। खिड़कीसे सरककर आते हुए ठंडी हवाके झोंके उसके रेशम-से बालोंको आन्दोलित-सा करके बेणीके कठोर बन्धनसे मुक्त कर रहे हैं और दो-चार हल्के लाल काले रेशमके बारीक धागे-से उसके गोरे मुखपर लहरा रहे हैं। खिड़कीकी सीखोंपर मोतीकी झालर-सी लटकी पानीकी बूँद कभी-कभी किसी मस्त हवाके धक्केसे टूट जाती है और उड़कर चाँदकी किरणोंको हटाती हुई, उसके मुखपर जा गिरती है। उस शान्त मुखमण्डलपर एक हल्की-सी कँपकँपी लहर जाती है।

मैं इस सौन्दर्यमें डूब-सा गया हूँ। लगता है तन-मन और प्राणपर एक नशा-सा छा गया है। रथके इन धाराओंकी तरह विचारोंके हल्के-हल्के थपेड़े मेरे मस्तिष्कमें या किसी अनजान देशसे न जाने कितनी सत्ता और नशीली सुगन्धि चुराते हुए आ रहे हैं। कभी-कभी किसी मस्त झोंकेसे रूप खिड़कीकी सीखोंपर

लगता हुई जलकी बूँदाकी तरह ही मेरी नाजुक भावनाएँ टूट जाती ह । एक सिहरन होती है और बस फिर वही भ्रम । कितना सुन्दर चॉद है ?

क्या प्यार इस चॉद सा नहा है जो निराशा और एकाकीपन क कजरारे बादलाको हटा आदमाकी जिन्दगीकी नीरस आसमानी घाटीमें चमक उठता है ? क्या कामनाओ और इच्छाओकी सघर्ष भरी दुनिया इन भींगे हुए पड पल्लवाकी भॉति ही खामोश सिर झुकाये सो नहा जाती, तृप्ति बन बनकर बरसती हुई इन शीतल किरणो म ? जिन्दगीका फूला भरी अँधेरी घाटीमें क्या प्यारकी चॉदनी किरणें सुनहरी तितलियो-सी बरस नहीं पडता और सपनाकी हर पॉखुरीपर मगलमयी आकाक्षाओकी किरणें थिरक नहीं उठतीं ? प्यारकी चॉदनी कितनी मधुर है, प्यारक हर झाकेम कितना नशा है, प्यारकी रागिनीम कितनी मस्ती है । मेरे इन विचाराम कुछ व्यवधान पड रहा है । इस नम ठढा हवाम कॉपती हुई एक सगीतकी माठी लहर आ रही हे । बगलके कमरेम कोई मस्तीमें भरा हुआ गा रहा है

अपने पिया सन बोला गुजरिया
हमें लागला नाक उजरिया ना—

इस गानेम इस वातावरणम चारा ओर नादका सरूर है। चारा ओर सब नादके नशम झूम रहे ह । लगता है जैसे मे भी जो कुछ सोच रहा हूँ वह नाशम और एसा नींदमें जिसम बहुत प्यारे प्यारे सपने इन्द्र धनुष-से पख पसार कर छा जाते ह । क्योकि यह सब गलत है । मेरे इन विचाराम कल्पना हा कल्पना है । जिनमें मुझे

चिढ है यद्यपि मेरे वेदोगीक क्षणामें ये मुझपर ऐसी छा जाती है कि मैं सारा वास्तविकता भूल जाता हू।

मेरे बगलमें जो सो रही है, यह मेरी दूरके रिश्तेकी बडी बहन है। उनकी ओर देखते ही विचारोंका एक सख्त झोका आ जाता है। और प्यारके प्रति कल्पनासे सँवारी हुई मेरी मासूम नाजुक भावना टूट सी जाती है। आजसे चार वर्ष पहले उन्होंने भी किसी को प्यार किया था। मैं सोच सकता हूँ, स्त्री होनेके नाते और विश्वविद्यालयकी उच्चतम कक्षामें साहित्यकी विद्यार्थिनी होनेके नाते प्यारके प्रति उनके भी सपने बडे रंगीन रह होंगे। उनकी रंगीनी तितलीके पखा या इन्द्र धनुषके रगों सी क्षणिक नहीं रही होगी। तभी तो उन्होंने अपने प्यारके मासूम सुकुमार दीपकको समाजकी आँधीमें रख दिया। सोनेकी चमकमें खोयी हुई धनवान् पिताकी आँखोंमें भी धूलकी ढेरीकी ओर देखना पडा, जिसमें उनकी प्यारी लाडली बेटीकी मुसकान चमक रही था। लखपती लडकेको छोडकर उसी लडकेसे उन्हें शादी करनी पडी। उनका विवाह हो गया—प्रेम विवाह।

मुझे याद आती है विवाहके पहलेकी एक रात, जब डाइनिंग टेबिल पर सब बैठे थे। पिताने शराबकी घूँट गलेके नीचे उतारते हुए उनकी ओर घूर कर देखा था और बड टूटी स्वरमें बोले थे, "पछताओगी रूपा। प्यार आत्मिक सम्बध हो सकता है पर विवाह आर्थिक सम्बध है। प्यार नहीं, रुपया जरूरी है विवाहके लिए। तुम्हें आगे चलकर रुपयेकी कमी खलेगी और तब यह प्यार खोखला लगने लगेगा। यह सब क्षणिक भावुकता है

जिसम आकर तुम सब चीज़ पर ठोकर मार रही हो। आज तक कोई भी 'लव मैरिज' मेरे सामने एसा नहा आया है जिसका अत असफल या दुखान्त न हुआ हो।"

इन्होने उत्तर दिया था, 'हो सकता है, पिता जी, लेकिन मेरा विश्वास है कि प्यार अभावोम भी सुखी रख सकता है। मै हर परिस्थितिमे रह लूँगी और आप मुझे प्रसन्न ही देखेंगे। धनके बन्धनम विवाहको बॉधना विवाहका अपमान करना है। विवाहके लिए धन नहा प्यारकी जरूरत है। आप मुझे क्षमा करेंगे।"

इसके आगे वे कुछ बोल नहीं थे। इतना कहते हुए उठ गये थे कि "तुम सिद्धान्त कह रही हो—क्रियात्मक जगत्‌म यह सब एसा नहा होता।"

मुझे लगता है जैसे वास्तवम क्रियात्मक जगतम एसा नहा होता। प्यारका नशा भावुकताकी मदिराका परिणाम है। भावुकता समाप्त होते ही प्यारका नशा उखड जाता है। भावुकता चिरस्थायी नहा होता। उसका निर्माण और अन्त हर क्षण प्रत्याशित है। इसीलिए प्यारके अस्तित्व पर विश्वास नहा किया जा सकता। यही कारण है कि अनेकानेक प्रेम विवाह कुछ सालो बाद रूखे सूखे विवाह रह जाते है। एसे विवाह जो गलेम मौतके फन्दे-से लगते है। बहुत-से एसे विवाह भी उदाहरणार्थ मेरी ऑखोंके सामने आना चाहते है, जहाँ प्रारम्भका प्रेम अन्तम इतना घृणाम परिवर्तित हो गया कि एक दूसरे पर जान दे देनेके स्थान पर जान ले लेनेकी बात तक सोचा जाने लगा। लेकिन मै यह सब विचार अपनी आत्माके सामने आने नहा देना चाहता। मानना

हूँ यह मेरी कमजोरी है क्योंकि प्यारके लिए मेरे हृदयमें एक इतना कोमल पहलू है जो किसी तरह भी उसका भयंकर टूटा हुआ श्रृंगार बदसूरत रूप देखना नहीं चाहता और न उस पर यकीन ही कर सकता है। फिर भी उनका वास्तविक रूप मेरे दिमागमें खिंचा हुआ है। इस समय मेरी अवस्था ऐसी नहीं है कि मैं इसपर निश्चित रूपमें कुछ सोच सकूँ। मैं घबरा गया हूँ। एक ओर तो मेरा हृदय पत्र बहुत प्रसन्न हो गया है और दूसरी ओर कुछ तानी घटनाओंके कारण मेरा मस्तिष्क पत्र भी प्रसन्न है। मैं नहीं चाहता कि मैं इस समय निरंकुश भी इस विषय पर सोचूँ लेकिन न चाहने पर तो विचार और भी तेजीसे आते हैं। मेरे एक मित्र हैं जो स्वभावमें बहुत कुछ कवि हैं। स्वच्छन्द लापरवाह प्रकृतिके। ईश्वर की कृपासे धनका अभाव उनके पास नहीं। चित्रकलाके प्रशंसक हैं और चित्रकारीमें कुछ शौक भी है उन्हें। उनका प्रेम विवाह हुआ। उनकी पत्नीकी प्रकृति ठीक उनकी-सी है। वह एक कुशल संगीतज्ञा और वादिका है। स्वच्छन्दता और लापरवाही उनकी नस-नसमें भरी है। बहुत दिनोंसे मैं यह जाननेकी कोशिशमें था कि आखिर उनका प्यार कहाँसे शुरू होता है। वह कौन-सा स्थान है जहाँ वे दोनों एक दूसरेको प्यार करते हैं। क्योंकि मेरे सामने वे हमेशा झगड़ते थे। उनके झगड़े ऐसे नहीं होते थे जिनकी तहमें प्यार हो, अपितु भयानक उपेक्षा होती थी उनकी तहमें। उनके इस तरहके व्यवहारसे मैं बहुत दिनों तक बहुत परेशान रहा, क्योंकि उन दिनों मैं सोचता था कि प्रेम विवाहोंकी असफलताका कारण आर्थिक है। लेकिन यहाँ तो उसका प्रश्न ही

न उठता था। इधर एक दिन मुझे मालूम हुआ कि वे दोनों अलग हो गये हैं और अलग-अलग रहने लगे हैं। इतना मनमुटाव बढ़ जानेपर आश्चर्य हुआ। उनसे मैं फौरन मिला। कुछ अनजान बनते हुए मैंने पूछा, "भाभी कहाँ हैं?"

"उनकी बात मत कर, रञ्जन", उन्होंने बहुत दुखी और खिन्न होते हुए कहा।

"क्यों? क्या अब वह जो विवाहके पहले थीं नहीं है? जिनके ऊपर तुम तन, मन, धन सब निछावर किये हुए थे। जिनके एक दर्शनके हेतु तुम स्वर्गके देवताओंको भी ठुकरा सकते थे! वह प्यारका अमरता जिसपर अखंड विश्वास था क्या एक कोरा सपना ही था?"

"यह अजीब बात मैं तेरे मुँहसे सुन रहा हूँ!" वह क्षण भर चुप रहे फिर बोले "पर अजीब नहीं, सत्य है यह। उन्हें अब मुझमें बिल्कुल रुचि नहीं रह गयी थी। मेरी बिल्कुल परवाह उन्हें न थी! विवाहके पहले वह अपनेसे अधिक मुझे प्यार करती थीं और अब वह मुझसे अधिक अपनेको प्यार करती हैं। उन्हें मेरा ख्याल बिल्कुल नहीं रह गया है। वह अपनी धुनमें ही मस्त रहती हैं, अपनेसे हटकर शायद वह और कुछ ख्याल करना भी नहीं चाहतीं।"

मैं कुछ समझ न सका। कुछ ही दिनों बाद मैं उनकी पत्नीसे मिला। वह चित्र इस समय मेरी आँखोंके सामने इतना स्पष्ट खिंच गया है कि इस वातावरणका प्रभाव धूमिल-सा हो गया है। एक पर्वतीय स्थानपर उन्होंने एक सुन्दर सा बँगला ले रखा था जो